श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

मंगलतंत्र प्रवचन
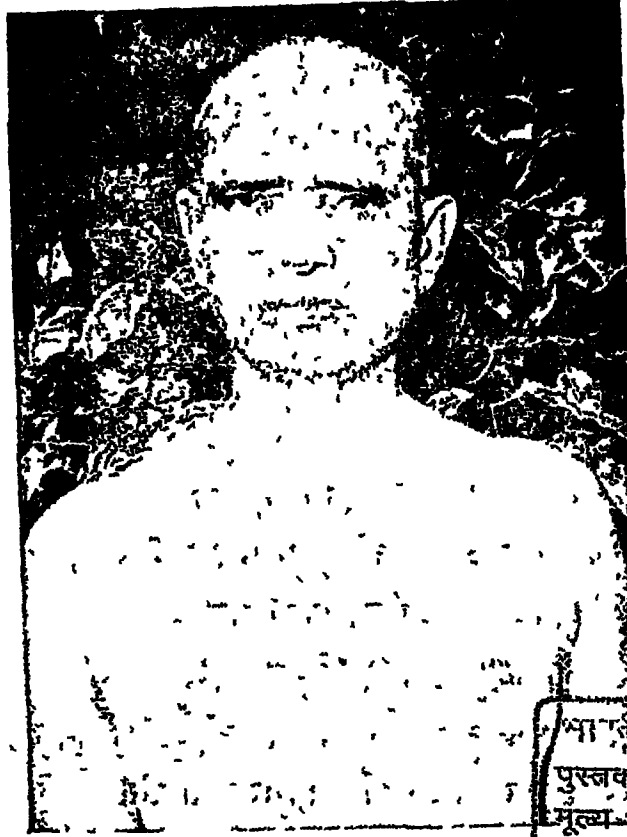
प्रवक्ता :—

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्त-न्याय-साहित्यशास्त्री

पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी

'श्रीमत्सहजानन्द' महाराज

प्रकाशक :—

खेमचन्द जैन सर्राफ,

मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)

प्रथम संस्करण १०००
सन् १९७८

लागत बिना जिल्द २)५० रु०
जिल्द का पृथक् ५० पै०

भारतवर्षीय वर्णी जैन साहित्य मंदिरके संरक्षक

(१) श्रीमती राजो देवी जैन ध० प० स्व० श्री जुगमंदरदासजी जैन आढ़ती, सरधना
(२) श्रीमती सरलादेवी जैन ध० प० श्री ओमप्रकाश जी दिनेश वस्त्र फैक्टरी, सरधना

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके सरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
(२) श्रीमती फूलमाला देवी, ध० प० ला० महावीरप्रसादजी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् ला० लालचन्द विजयकुमार सर्राफ, सहारनपुर
(४) श्रीमती शशिकान्ता जैन ध० प० श्री धनपालसिंह जी सर्राफ, सोनीपत
(५) श्रीमती सुवटी देवी जैन, सरावगी गिरीडीह
(६) श्रीमती जमना देवी जैन ध० प० श्री भवरीलाल जैन पाण्ड्या, झूमरीतिलैया

नवीन स्वीकृत संरक्षक

(७) श्रीमती रहती देवी जैन ध० प० श्री विमलप्रसादजी जैन, मंसूरपुर
(८) श्रीमती श्रीमती जैन ध० प० श्रीनेमिचदजी जैन, मुजफ्फरनगर
(९) श्रीमान् शिखरचंद जियालाल जी एडवोकेट, ,,
(१०) श्रीमान् चिरंजीलाल फूलचंद बैजनाथजी जैन बड़जात्या नई मडी, ,,
(११) श्रीमती पूना बाई ध० प० स्व० श्री दीपचन्द जी जैन गोटेगांव

सहजानन्द-साहित्य-उद्घोष

वस्तु सामान्यविशेषात्मक है, द्रव्यपर्यायात्मक है। अत. स्याद्वाद द्वारा समस्त विवाद विरोध समाप्त कर वस्तुका पूर्ण परिचय कीजिए और आत्मकल्याणके अनुरूप नयोको गोण मुख्य करके अभेदपद्धतिके मार्गसे आत्मलाभ लीजिए।

परमात्म-आरती

ॐ जय जय अविकारी ।

जय जय अविकारी, स्वामी जय जय अविकारी ।
हितकारी भयहारी, शाश्वत स्वविहारी ॐ··· ॥ टेक ॥

काम क्रोध मद लोभ न माया, समरस सुखधारी ।
ध्यान तुम्हारा पावन, सकल क्लेशहारी ॥ १ ॥ ॐ····

हे स्वभावमय जिन तुमि चीना, भव सन्तति टारी ।
तुव भूलत भव भटकत, सहत विपति भारी ॥ २ ॥ ॐ····

परसम्बंध बध दुख कारण, करत अहित भारी ।
परमब्रह्म का दर्शन, चहुं गति दुखहारी ॥ ३ ॥ ॐ···

ज्ञानमूर्ति हे सत्य सनातन, मुनिमन सचारी ।
निर्विकल्प शिवनायक, शुचिगुण भण्डारी ॥ ४ ॥ ॐ····

बसो बसो हे सहज ज्ञानघन, सहज शांतिचारी ।
टलें टलें सब पातक, परबल बलधारी ॥ ५ ॥ ॐ···

नोट—यह आरती निम्नांकित अवसरोंपर पढी जाती है—

१– मन्दिर आदिमे आरती करनेके समय ।
२– पूजा, विधान, जाप, पाठ, उद्घाटन आदि मंगल कार्योंमे ।
३– किसी भी समय भक्ति-उमगमें टेकका व किसी छदका पाठ ।
४– सभाओमें बोलकर या बुलवाकर मगलाचरण करना ।
५– यात्रा वदनामे प्रभुस्मरणसहित पाठ करते जाना ।

卐卐卐 卐
卐 卐
卐卐卐卐卐
卐 卐
卐 卐卐卐
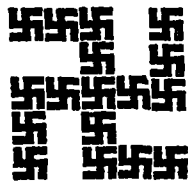
* आत्म-कीर्तन *

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥ टेक ॥

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ॥ १ ॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥ २ ॥

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग रुष दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ॥ ३ ॥

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥ ४ ॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ॥५॥

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरोंपर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमे ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रो द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक-बालिका, महिला तथा पुरुषो द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा ।

मंगलतंत्र प्रवचन

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज

ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्ध चिदस्मि ।

(१) शुद्ध तत्त्वका अभिवन्दन—शुद्धके लिए नमस्कार हो । शुद्ध दो तरहसे देखा जाता है—(१) एक तो निर्दोष हो जाय, दोष दूर हो जाय, पर्याय शुद्ध बन जाय, प्रभुता आ जाय, अरहत और सिद्धकी अवस्था हो उसे शुद्ध कहते हैं । यह तो हुआ पर्यायशुद्ध । आत्माका जो सहज स्वरूप है आत्मा सत् है ना, तो सत्त्वके ही कारण आत्मामे जो कुछ स्वरूप होता है वह शुद्ध कहलाता है । कोई भी पदार्थ जो भी पदार्थ है उसका अपना निज का स्वरूप आकार अवश्य है । स्वभाव बिना वस्तु नही, वस्तु बिना स्वभाव नही । जो भी है उसका स्वभाव अवश्य है ? तो आत्माका स्वभाव क्या है ? प्रतिभास, ज्ञानप्रकाश, चैतन्यमात्र । उज्ज्वल है यह आत्मद्रव्य । जिसकी निजी विशेषता है कि वह ऐसा प्रतिभास स्वरूप है कि जगतमे जो हो सब उसके प्रकाशमें रहेगा । स्वभाव उसका ऐसा है । तो जो सहज ज्ञानस्वभाव है उसे भी शुद्ध बोलते है । जैसे दूध शुद्ध है तो उस शुद्धक दो अर्थ लिये जा सकते हैं—एक तो व्रतियोको दिलाने लायक शुद्ध, मर्यादाके अन्दर गर्म किया हुआ हो, बिना जूता पहिने दुहा गया हो, जिसमे कोई अशुद्ध पानी वगैरह न मिलाया गया हो । इस तरह शुद्ध दूध जो पवित्रतासे लाया गया हो उसे शुद्ध दूध कहते है । यह तो एक व्यवहार नयसे व्रतियोको देने लायक एक शुद्ध दूधकी पहिचान है । उसमे अगर कोई अठपहरा थोडा पानी भी मिला दे तो भी वह शुद्ध कहलाता है । पर एक शुद्ध होता है द्रव्य शुद्ध याने दूध मे कुछ भी मिलाया न हो और दूधमेसे कुछ निकाला न हो, ऐसे दूधको कहते है शुद्ध दूध । पवित्रतासे भी लाया हुआ दूध हो और उसमे शुद्ध पानी मिलाया हो तो भी वह दूध शुद्ध नही कहा जा सकता । यहां वस्तु शुद्धिकी बात कह रहे हैं । तो दुहकर लाये हुए दूधमें पानी

न मिलाये और उस दूधमे से कुछ निकाले भी नही तो वह शुद्ध दूध कहलाता है। यहाँ वस्तुकी अपेक्षा शुद्ध कह रहे है। दूधमे पानी मिलाया तो अशुद्ध, और दूधमे से क्रीम निकाल लो तो वह सपरेटा दूध हुआ, वह भी अशुद्ध हुआ। दूध दूध ही हो, दूधमे दूसरा कुछ न मिला हो और दूधमे से निजका कुछ न निकाला हो उसे कहते है शुद्ध। इसी निगाह से आत्माकी शुद्धि देखो। जब हम आत्माको इस तरह जान रहे हैं कि इस आत्मामे कोई दूसरी चीज नही मिलायी। जैसे कोई कहने लगे कि आत्मामे कर्मबन्धन है, आत्मामे देह लगा है। आत्मामे क्रोधादिक है। यह मिलावट ही है ना। भले ही इस समय जीवमे कर्म लगे हैं, जीव देहमे बँधा है, क्रोधादि करता है। मगर जीवकी सत्तासे तो यह बात नही है। सहजस्वरूपसे तो नही है। इस समय हम निश्चयदृष्टिसे तक रहे है और उसमे भी शुद्ध नय से परम शुद्ध निश्चयनयसे। आत्मामे परका कुछ मिलावट नही होता और आत्मामे से कुछ निकाला नहीं जा रहा। जैसे कहते है ना कि आत्मामे ज्ञानगुण है, दर्शनगुण है, चारित्रगुण है, आनन्द गुण है, तो ये जैसे मानो आत्मामे से निकलकर आत्मामे फिट कर रहे है। ऐसी निकाल जहाँ न हो ऐसा आत्मस्वभावको निरखो। उस निरखमे जो अवक्तव्य आत्मतत्त्व आया वह है शुद्ध आत्मतत्त्व। ऐसे इस आत्माको नमस्कार हो। नमस्कारका अर्थ है झुकना। ऐसे शुद्धतत्त्वकी ओर मेरा झुकाव हो।

(२) दृष्टियोका सदुपयोग आत्मस्वभावदर्शनमे—जब पर्यायदृष्टिसे शुद्ध तत्त्वको देखा तो वहाँ भी हम शुद्ध अतस्तत्त्वको निरखें तब व्यवहारदृष्टिके देखनेका फल पाया समझिये। जब शुद्ध द्रव्यदृष्टिसे निरखते है तो बीचकी सब बातोको छोडकर निरखते है। यह सब बात ज्ञानमे सम्भव है। जैसे हड्डीका फोटो लेने वाला एक्सरा-यत्र हो, उसपर कोई खडा हुआ है तो एक्सरा यंत्रसे फोटो ली जाती है तो किसकी फोटो आती है? हड्डीकी। और यत्रके सामने तो पहले तो रोम आये, फिर चमडी है, फिर खून है, फिर मास है, फिर भीतर हड्डी है। तो उस यत्रने इन सबकी फोटो लेना तो छोड दिया और सिर्फ हड्डीका ही फोटो लिया, तो जब इन बेजान यत्रोमे भी ऐसी तारीफ पायी जाती है कि जिसकी बात करना है उसकी करते है बाकी सबको छोड देते है, तब फिर इस पवित्र ज्ञानमे क्या यह कला न होगी कि यह ज्ञान जिसको जानना चाहे उसको जाने? और बीचकी कुछ भी चीजें आयें उनको न जाने। जब गरम किये हुए पानीको स्वभाव दृष्टिसे देखते है तो इस ज्ञानमे गर्मपना नही आता। ठंडापन आता है। उस ज्ञानमे ऐसी तारीफ है।

(३) स्वभावदर्शन कलाकी निरुपद्रवता—अहा इस आत्मस्वभावदर्शनकी कलाका जो उपयोग कर ले उसे विपत्ति आती नही। जैसे एक बड़ी नदीमे कोई कछुवा है, वह पानीके

अन्दर रहता है। उसने सोचा कि मैं पानीके अन्दर चलता रहूं और अपनी चोच पानीसे बाहर निकाल कर घूमूं। घूमने लगा। अब पूर्व दिशासे २-४ पक्षी आते हैं तो कछुवाने पश्चिमकी ओर अपनी चोंच कर ली। पश्चिमसे कोई पक्षी आये तो फिर उस कछुवेने पूर्वकी ओर अपनी चोंच करली। बहुतसे पक्षी चारो ओरसे आ आकर उस कछुवेकी चोच चोटने लगे। वह बेचारा कछुवा परेशान हो गया। अरे वह कछुवा अपनी मूर्खतासे परेशानीमें हैं। उसे कोई समझाने वाला हो—अरे कछुवे तू क्यों परेशान होता है। तेरेमे तो एक कला है कि जिसका उपयोग करे तो ये २०-५० ही क्या, लाखो पक्षी भी तेरा कुछ भी बिगाड नही कर सकते। क्या है वह कला ?....अरे एक बिलस्त पानीके अन्दर तू अपनी चोचको अपनेको डुबा ले तो फिर ये लाखो पक्षी तेरा क्या कर सकेंगे ? ऐसे ही यह आत्मा अपने ज्ञान सरोवरसे बाहर उपयोगकी चोच निकालकर बाहर डोल रहा है। इन्द्रियके विषयोमे, धन वैभवमे उपयोग डाले जा रहा है। फल यह होता है कि चारो ओरसे कहीसे कुटुम्ब, कहीमे चोर, डाकू आदिक, कहीसे राजा, यो अनेक लोग इसे सताते हैं तो यह अपने उपयोगको चोच बदलता रहता है। माँ सताये तो बापके पास चले गए, बापने सताया तो माँ के पास चले गए, मित्रने सताया तो किसी दूसरे के पास चले गए, इसपेक्टरने सताया तो वकीलके पास चले गए। यों उपयोग बदलता रहता है। इस तरहसे यह दु:खी होता। ये आचार्यजन, सतजन समझाते है कि हे आत्मन्! तू अपनी मूर्खतासे दु:खी हो रहा है। तेरेमे तो एक कला ऐसी है कि जिसका उपयोग करे तो १०-२० की तो बात क्या, हजारो लाखो आदमी भी सताये तो भी तेरेको वे बाधा नही पहुचा सकते। तेरेमे वह कला क्या है कि तू अपने ज्ञानसागरमें उपयोगकी चोचको डुबा लें, फिर तेरे पर कोई विपत्ति नही। यह विपत्ति तब तक है जब तक कि हम बाहरमे कुछ देखते है, निरखते हैं, चाहते हैं, लगाव रखते है।

(४) अन्तस्तत्त्वकी अनुभूतिकी महत्ता—प्रसंग यह चल रहा था कि अपना जो शुद्ध स्वभाव है केवल आत्मतत्त्वके कारण अपने आपमे अनादि अनन्त अहेतुक अन्त. प्रकाशमान जो एक सहज शुद्ध स्वभाव है उस स्वभावरूप अपनेको स्वीकार कर लेना यह कहलाता है शुद्ध तत्त्वका आश्रय करना। इसी शुद्ध तत्त्वको निरखा था प्रभुने और उसके फलमे अपने आपका अनुभव किया, बस यह ही शुद्ध चैतन्य मैं हू। सहानुभूति, किसी दूसरेको दु खी देखकर सहानुभूति आती है और सुख देखकर भी सहानुभूति आती है। और प्रभुका शुद्ध स्वरूप देखे वहाँ भी सहानुभूति आती है। किसी दूसरे जीवमे जो कुछ हम देखते हैं झट हम अपने आपमे भी उस प्रकारका प्रभाव लाते है। लोग कहते है कि देखो मेरी माताने गरीबपर दया की। बेचारा भूखा था, हमारी माता बड़ी दयालु है, देखो इस बेचारेको हमारी माताने भर-

पेट भोजन करा दिया । अरे माताने उस गरीबपर दया की या अपने आपपर दया की ? हुआ क्या कि उस भूखेकी पीडाका अदाज करके माताका दिल खुद दु:खी हो गया । उसने अपना, दु:ख दूर करनेके लिए उस गरीबको भोजन कराया । उस भूखेपर उस माताने कोई दया नही की । कैसा ही धर्म करे कोई, सहानुभूति तो खुदकी खुदगे हुई । प्रभुका शुद्ध स्वरूप देखा । उस स्वरूपको देखकर प्रभुके स्वरूपमे ध्यान लगाया, मग्न हो गए तो लोग क्या कहते हैं कि यह बहुत ऊँचे भगत हैं । ये प्रभुमे ही मग्न रहते हैं । अरे प्रभुमे कोई मग्न रह सकता है प्रभु तो दूर है । सिद्ध लोकमे है या समवशरणमे है, बाहर हैं । उनके स्वरूपका ध्यान करके जो उनके स्वरूप जैसा अपना स्वरूप तकनेमे आये बस उसमे मग्न हो गया । तो परमार्थत: वह अपनेमे मग्न रहा तो प्रभुस्वरूपको देखकर अपनेमे यह बुद्धि लायें कि मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हू । बडा उद्देश्य, बडा काम और अपना बडप्पन, महत्त्व इसीमे है कि प्रभुकी प्रभुता जानकर, अपने आपकी प्रभुता निरखकर दीनता छोडें और सहज आनन्दस्वरूपमे मग्न होनेका यत्न करें । ऐसा काम करनेमे कष्ट भी बहुत आयेंगे । और असलमे कष्ट एक भी नही आता ।

(५) कष्टको विवेकसे अनवगणना—भैया ! कष्ट तो माननेका है । जैसे किसीका आज एक हजार रुपया घट गया तो वह बडा कष्ट मानता है । उस मोहीसे यह तो पूछो कि वह कष्ट कहाँ है तेरे आत्मामे ? हजार जानेकी जगह मान लो । घरमे ही आग लग गई होती तो उससे तो अच्छे हो ना अब ? ऐसा जब कोई समझाता है तो उसे कुछ समझमे आता है,···अरे कुछ कष्ट नही है । तो कष्ट क्या है ? किसी पदार्थसे कष्ट नही आता । हम भीतरमे कल्पनायें बनाते है और कष्टका अनुभव करते हैं । बाहरमे कोई कष्ट नही है । कोई लखपति होकर भी सतोष नही कर रहा और अनेक कष्ट मान रहा । अभी मेरा यह काम अधूरा पडा, अभी इसके बिना क्या जिन्दगी ? अभी तो यह काम हुआ ही नही,···और एक कोई १००-५० रुपयेकी पूजी वाला खानेके सामानका खोमचा फेरने वाला अपने सिरपर खोमचा रखकर यत्र-तत्र खोमचा लगाता-फिरता है, वह हर जगह खुश रहता है, गाना भी गाता है । तो बाहरसे कोई सुख दु:खका हिसाब है क्या ? सब अपने ज्ञानके अनुसार है । अपने ज्ञानको विशुद्ध बनावें । शुद्ध चैतन्यमात्र अपने आपको निरखनेका पौरुष करें । यह ही विवेककी बात है इस जीवनमे । और जो कुछ समागम पाया है वह साराका सारा न्योछावर समर्पण उत्सर्ग, बलिदान, होम, परित्याग, सब कुछ करना पडे और इस सहज स्वरूपका दर्शन मिलता है, तो यो समझो कि हमने कुछ भी नही खर्च किया, न कष्ट उठाया, सहज मिल गया । बाहरी पदार्थ आखिर मिटने ही हैं । कब तक जियेंगे, कब तक रहेगा समागम ? ज्यो ज्यो समय गुजर रहा है त्यो त्यो मरणके निकट पहुच रहे हैं और जो वियोग होना है उस कालके

सम्मुख आ रहे हैं। उसकी चिन्ता छोड़ें। वर्तमान परिणामके सुधारमे आवो। भाव सुधारा तो सब सुधारा, भाव बिगाडा तो सब बिगाडा। यह भव भी, परभव भी। दुनियामें दिखने वाले स्वच्छन्द पुरुषोकी होड़ मत करो। होते हैं कुछ लोग कि जिनके पूर्वकृत पुण्यका उदय है, यहाँ बड़े मौजके समागममें हैं, और मनमाना पापकार्य करते है। संसार विचित्रतामय है, हमे उनकी होड़ नही करना है। अपने तो अपना प्रोग्राम बनावें कि हमे संसारमे नही रहना है। मुक्त होना है, यह मनमे ज्ञानमे एक निर्णय बना लें। एक ही काम है मेरा। ससारमें नही रहना है, मुक्त होना है। एक ध्येय बनं जाय तो सब बात आसान हो जाती है। न किसीका विसंम्वाद रहेगा, न किसीकी अटक रहेगी। स्वभावदर्शन और स्वभावमग्नता रहें। ऐसा मैं शुद्ध चेतन हू।

(६) शुद्ध चिदानुभूतिमें परमार्थ आत्मसेवा—ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि। शुद्धके लिए नमस्कार हो। और यह मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हू। दखो ससारमें कोई किसीका शरण नही। कोई सोचे कि यह मेरा पुत्र है, यह बडा होगा, सुख देगा, आराम देगा। तो क्या आपको यह पूरा निर्णय है कि यह बडा होकर सुख ही देगा? अरे कहो ऐसा हो जाय कि आपको कहीं यह कहना पडे कि इसमे तो यह न होता तो अच्छा था। क्या है कुछ निर्णय आज? ऐसे ऐसे लोग भी देखनेमे आते है कि लडका माँ को सताता, स्त्रीका पक्ष लेता, माँ को अलग कर देता, कुछ परवाह नही करता, गालियाँ भी देता। और मानो कमा कर खिलाये पिलाये भी तो भी उसने अपने मात्र विनय व्यवहारसे दिया सो बात नही। आपकी सज्जनता भी है। आपका कुछ प्रभाव भी है, आपने कुछ मकान वगैरह अपने नाम भी कर रखा होगा। ऐसी अनेक बातें हैं सो वह पूछता है। प्रथम बात तो यह है कि पुण्य आपने कमाया उसका उदय है, उससे पूछता है। कोई किसीका शरण नही है। अपना शरण है तो अपना निर्मल परिणाम शरण है। परिणामकी मलिनता न हो तो कोई बाधा नही है। हम कुमार्गपर चलें तो हम अपने आप अपनेको बरबाद कर लेते हैं। प्रभुभक्ति और अपने आपके स्वरूपका ध्यान ये दो बातें ही हम आपको शरण हैं। इसी को मंगल, लोकोत्तम, शरणभूत कहा गया है। इस ओर ध्यान देना है, इस ओर अपने आपका उपयोग बनाना है। मैं सबसे निराला हूं, देहसे भी भिन्न केवल ज्ञानप्रकाश मात्र हू। ज्ञान सिवाय और मैं कुछ नही हूं। जहाँ सबसे निराले ज्ञानज्योतिके दर्शन कर लिया वहाँ सर्व ऋद्धि सिद्धि प्राप्त है। जहाँ इच्छा नही तहाँ सर्वसिद्धि है और जहाँ इच्छा है वहाँ सारी विपत्ति है। तो कुछ क्षण अपनी दयामे भी बिताना चाहिये। नौकरी तो सबकी करना ही पड़ता है। पुत्रके पुण्यका उदय है तो पुत्रकी नौकरी करनी पडती है। जिन जिनके पुण्यका उदय

है उनकी सेवा करनी पडती है। करें सेवा, गृहस्थी है, मगर रात दिनके चौबीसो घटोमे कई समय ऐसा भी रखें जहाँ मात्र अपनी सेवा करें। अपने को ज्ञानस्वरूपमें निरखें, यह ही अपनी वास्तविक सेवा है।

(७) शरण्यका अन्वेषण—हम आप वर्तमानमे अशुद्ध अवस्थामे गुजर रहे हैं। और इसी कारण दुःखी रहते है। जो ठौर है, घाम है सुखी होनेका उस जगह फिट नही हो पाते। तो आवश्यकता है कि हमारी अशुद्ध परिणति मिटे और शुद्ध परिणति बने। इस सम्बंधमे विचारणीय विषय यह है कि हमारी शुद्ध परिणति कैसे बनेगी ? किसका सहारा लेनेसे बनेगी। इस जीवमे पुरातन आदत है कि किसी न किसीका हमेशा सहारा लिए रहते हैं। कही सहज सहारा है तो कही जान बूझकर सहारा हो पाता है या नही यह अन्य बात है मगर प्रकृति है ऐसी कि वह सहारा लिए रहे। यहा विचार करो किसका सहारा लें तो शुद्ध परिणति बने ? जहाँ दोष न रहे और गुण प्रकट हो उसे कहते है शुद्ध परिणति। तो किसी अशुद्ध तत्त्वका आश्रय लेनेसे परिणति तो शुद्ध न बनेगी, क्योकि ऐसा तो अनादिसे करते चले आये कि हम अशुद्धका आश्रय लेते। जब जो पर्याय पाया उसे माना कि यह मैं हू। जब जो गुण की स्थिति हुई उसीमे माना कि यह मैं हू। इस तरह अशुद्ध तत्त्वका आश्रय हम अनादिसे करते चले आये। अशुद्धका अर्थ क्या है ? जिसे बताया था कि वस्तुमे दूसरी वस्तु मिलाया या वस्तुके निजकी बात कुछ निकालकर फेकी और फिर जो बताया जाय उसे अशुद्ध कहते है। क्रोधी हू, मानी, मायावी, लोभी हू, मनुष्य, तिर्यञ्च आदिक हू, व्यापारी, श्रीमान, राजा आदिक रूपसे अपनेको मानना वह अशुद्धका आश्रय है। और कभी इस रूपमे देखनेका यत्न किया, यह चर्चाकी कि आत्मामे अनन्त गुण भरे पडे हैं, ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, सब गुणोका वह पिण्ड है, समुदाय है। यद्यपि यह चर्चा शुद्ध तत्त्वको पहिचाननेके लिए की गई है। केवल आत्मा ही आत्मा कोई कहे तो क्या परिचय होगा ? तो शुद्ध आत्म तत्त्वके परिचयके लिए गुणोका वर्णन है। लेकिन कोई यो भी तकता रहे कि हाँ जैसे बोरे मे गेहू भरे हैं, चने भरे है ऐसे ही आत्मामे अनन्त गुण भरे हैं, तो उसने मूलभूत आत्माको तो नही पहिचाना। तो गुण तो समझानेके लिए प्रतिनिधिरूपमे पेश किए जाते हैं। इससे निराला कुछ नही है। तो भेद एकान्त किया, पर्याय एकान्तमे देखा, तो किसी भी रूपमे अशुद्ध तत्त्वका हम सहारा लिए आये; उससे तो कल्याणकी बात न बनेगी। तो खुदमे तो हम अशुद्ध हैं तो उसके सहारेसे कैसे परिणति शुद्ध बने ? बाहरमे प्रभुका ध्यान है। प्रभु तो शुद्ध हैं, लेकिन उनका तो हम सहारा ले कैसे सकते ? हम यहाँ बैठे है ? और परवस्तु होने के कारण हम आलम्बन तो नही कर सकते। ज्ञानके विषयभूत हो गए, पर ऐसा आलम्बन

मिला कि उस आलम्ब्य पदार्थसे मेरेमे परिणति जागृत हुई, ऐसा तो कोई परपदार्थ होता नहीं। तो परके आलम्बनसे अशुद्धता नही, खुद अशुद्ध बना हुआ है। तो शुद्ध पर्याय प्रकट होनेका उपाय क्या रहा? उसका उपाय जैन शासनमे बताया है कि पर्यायमात्रका ही आलम्बन छोड दें और अपनेमे शाश्वत अन्तः प्रकाशमान आनन्दधाम अहेतुक सहज निरपेक्ष जो स्वभाव है उस स्वभावकी दृष्टि करें। इसी स्वभावका नाम है भूतार्थ।

(८) **स्वरूपपरिचयमें भूतार्थपद्धतिकी उपयोगिता**—भूतार्थ अनेक नही होता, तब ७ तत्त्वोके रूपमे जो देखा है वह भूतार्थ नही। भूतार्थ कहते है स्वयं सहज अपने आप होने वाला अर्थ। भाव तो ऐसा ही है चैतन्यस्वरूप। इस चैतन्यस्वरूपको समझानेके लिए महर्षि सतोने ७ तत्त्व ६ पदार्थोंका प्रतिपादन किया है। यह अभेदको समझनेके लिए भेद द्वारा परिचय करानेका प्रयत्न किया है, इस कारण यह भेद अटपट नही है, अनुरूप भेद है। एक तो होता है काल्पनिक और एक होता है अनुरूप प्रतिपादन। तो ६ तत्त्वो द्वारा हम समझते है। उन ६ तत्त्वोका जब भूतार्थ शैलीसे अधिगम होता है तो वे सम्यक्त्वके कारण होते है। भूतार्थ शैलीसे अधिगमका अर्थ यह है कि इस प्रकार जानना कि जिस प्रकार भेदसे हटकर अभेदमे पहुचा जाय। जैसे जीव तत्त्वको ही देखा। जो ७ तत्त्वोमें जीव नाम है वह भेदरूप जीव है। अखण्ड अभेदरूप नही। तो जीवमे जो कुछ जाना, गति इन्द्रिय जानिये सबको भूतार्थ शैलीसे जानने लगो। और भूतार्थकी शैलीसे जाननेकी पद्धति यह है कि यह किससे प्रकट हुआ है? उसको जानो। इस प्रश्नके उत्तरमे क्या होगा कि जिसकी बात कर रहे है वह गौण हो जायगा और बीजभूत तत्त्व मुख्य हो जायगा। जैसे किसी बालकका जब हम परिचय करते हैं तो पहिले उसका नाम पूछते हैं। क्या नाम है? बता देता है। यह तो बालकका बालकरूपसे परिचय बना और जिस वक्त पूछते है कि बताओ तुम किसके लडके हो? तो उस समय बालक गौण हो जाता है और किसके, इस प्रश्नमे जो ज्ञेय है वह मुख्य हो जाता है। तो ऐसे ही जीव जाति, जीव गति ही जीवकी परिणतियां इन्हे जाना, वे तो जीव तत्त्वमे रहेगी और जब यह समझनेकी कोशिश की ये सब किससे प्रकट हुए? इस का मूल स्रोत क्या है? बस भूतार्थ पद्धति बन जायगी। वह है चैतन्यस्वरूप जिससे प्रकट हुआ है वह है एक रूप, जिससे अनेकता जगी है। इसके सम्बन्धमे कुछ लोग कहते हैं कि—

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णात्पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

अर्थात् यह पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकलता है। पूर्णसे पूर्ण निकलते रहने पर भी वह पूर्ण ही अवशेष रहता है, तो वह मूल पूर्ण क्या है? प्रति समयमे जो पर्याय

उत्पन्न होती है वह पूर्ण होती है। किसी भी समयकी कोई भी परिणति यह प्रश्न नही कर सकती हम अधूरे बन पाये, हमे पूरा बन लेने दो ऐसी कोई परिणति नही होती। यह सत् है तो प्रति समयमे जो अवस्था है वह पूर्ण है। खोटा हो, अच्छा हो, कुछ भी हो, आधे हम बन पाये, आधे बनना हमारा शेष है, ऐसा किसी भी परिणतिमे प्रश्न नही होता। भले हा छद्मस्थ अवस्थामे अन्तर्मुहूर्तमे हम जान पाते हैं कि यह अमुक चीज है। जान पाये, जानने मे बात तो आयी ऐसी पर होनेमे, निर्माणमे अन्तर्मुहूर्त नही लगता। जो राग अनुभवमे आता है वह अन्तर्मुहूर्तका आता है। इसके मायने यह नही है कि कोई राग अन्तर्मुहूर्तमे पूरा बनता है। प्रति समय पर्याय पूर्ण होती है, एक समयका राग अनुभवके योग्य नही होता, प्रति समय पूर्ण पूर्ण पर अनुभवमे आता है अन्तर्मुहूर्तका पर्याय। तो यो कहा कि जानना शुरू हुआ और बना, इतने मे ही अन्तर्मुहूर्त लग जाता है, लगो, फिर भी प्रतिसमय मे पूर्ण बनता है परिणमन और पूर्ण ही है यह स्वभाववस्तु और पूर्ण पूर्ण बनता रहता है प्रतिसमय और पूर्ण निकलता रहने पर भी यह परमार्थ, यह स्रोत, यह पूर्णका पूर्ण ही बिराजा रहता है। तो अब प्रश्न हुआ कि ये सब किससे आविर्भूत हुए ? तो भूतार्थनयकी पद्धति बन जाती है। यो भूतार्थविधिसे जीवतत्त्वका परिचयका हुआ अखड ज्ञायकस्वरूप है।

(६) अजीवादि तत्त्वोंको भूतार्थविधिसे जाननेकी उपयोगिता—अजीवतत्त्वमे कर्म है। कर्म परिणति है। जो भी प्राप्त हो कर्ममे उसके प्रति भी भूतार्थपद्धतिसे प्रश्न होता हो तो वहाँ भी एकत्वमे आयेंगे। जैन शासनका तत्त्वज्ञान विलक्षण अद्भुत उद्यान है। जीवमे ही होने वाली परिणतियाँ भी अजीव हैं। उनमे भी प्रश्न हो जाता है और भूतार्थ शैली बनेगी। तो ये ७ तत्त्व जब भूतार्थसे जाने जाते है तो ये एकत्व पर पहुचा देते हैं। आश्रव कही एकसे नही होते। निरपेक्ष होकर एक ही पदार्थ अपनेमे आश्रव पर्याय करे सो नही होता। हुआ सयोगमे, पर वह आश्रव सयोग दशा ऐसी है कि दोनोमे ही आश्रव हो रहा, परस्पर अपेक्षा रख रहे, पर परिणमन दोनोमे पृथक पृथक हो रहा। कर्म वर्गणाओमे कर्मत्व आना कर्मका आश्रव है और इस जीवस्वभावमें विभावका आना जीवका आश्रव है। तो जीवश्रवका प्रश्न करें। यह किससे आविर्भूत हुआ ? आखिर किसी मनुष्यको देखकर जो अपना सम्बधित हो, एक बार प्रश्न उठ ही जाता कि यह कहांसे आया ? और ऐसी जानकारी हुए बिना कुछ चैन सी नही पड़ती। तो यहाँ जो आया है विभाव उसकी भी जानकारी करें। कहांसे आया है ? परमार्थतः किस स्रोतसे आया जीवका विभाव याने उपयोगका उस रूप परिणमन, जैसे कर्म दशाका रंग इस उपयोग भूमिमें झलका है उसके अनुरूप उपयोगका बर्तना, विकल्प होना यह

ही तो आश्रव है। वह आश्रव, वह विकल्प कहांसे आया ? उसका जनक कौन है ? उस स्रोत का पता लगाओ। वह स्रोत है यह एक भाव, यह जीवत्व। ऐसे ही कर्मत्वमे है, बधमें ऐसा ही है, सम्वर होनेमें निर्जरा भावमे और मोक्षतत्त्वमे ऐसा ही है। जब भूतार्थ पद्धतिसे यह जाना जाता है तो यह एकत्वका परिचय कराता है और उस एकत्वके परिचयमे सम्यक्त्वका अवसर होता है।

(१०) निराकुल शुद्ध चैतन्यका दर्शन—शुद्ध तत्त्वकी बात चल रही थी कि किसका आश्रय करे तो शुद्ध परिणति हो ? परके आश्रयसे तो शुद्धता होती नही, खुद अशुद्ध पर्यायमे है, उसके आश्रयमे शुद्धता होती नही, किन्तु अपने आपमे शाश्वत प्रकाश मान जो स्वभाव है वह शुद्ध है, स्वभाव शुद्ध है। न प्रकट हो तो शुद्ध है, प्रकट हो तो शुद्ध है। उस शुद्धका अर्थ इतना ही है कि परसे विविक्त और स्वयमे तन्मय—"जिन शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम। राग त्यागि पहुचूं निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम।" ये जिसके नाम बोले गये उस आत्मामे राग त्याग कर हमे पहुचना है, कहाँ पहुंचना है ? एकत्व जिनधाममें। मैं राग छोड कर उस निज धाममे पहुंचू जिस धामके ये सब नाम है—जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु, बुद्ध, हरि आदि। जो रागादिकको जीते सो जिन, ऐसा कौन ? ⋯ यह ही स्वभाव। जो कल्याणमय हो सो शिव, वह कौन ? ⋯यह ही स्वभाव। जो अपने ऐश्वर्यमे पूर्ण समर्थ हो सो ईश्वर। वह कौन ? यह चित्स्वभाव। जो अपनी सृष्टिको करता रहे सो ब्रह्मा, वह कौन ? यह चित्स्वभाव। जिसमे योगीजन रमण करते है, तृप्त होते हैं, सो राम वह कौन ? यह चित्स्वभाव। जिसका प्रतार बडा व्यापक है, जिसका सर्वत्र प्रसार है वह विष्णु। वह कौन ? यह चित्स्वभाव। जो सूक्ष्मसे सूक्ष्म परतर हो तभी वह व्यापक बन सकता है। बडी चीज, मोटी चीज, व्यापक नही बन सकती, स्थूल कभी बडा दायरा नही रखती। जो सूक्ष्म है उसीका दायरा बड़ा होता है। सूक्ष्मका ही क्षेत्र व्यापक होता है, स्थूल का क्षेत्र व्यापक नही होता। पृथ्वी व्यापक नही। इस जगह वैज्ञानिक ढंगसे और आपके मध्य लोकके नक्शाके ढंगसे खूब परख लिया जायगा कि पृथ्वी स्थूल है और जल उससे सूक्ष्म है, तो जलका हिस्सा अधिक है, पृथ्वीका हिस्सा कम है। उसका दायरा नही कर सकता। और, जलका दायरा इस मध्य लोकमे इतना बडा है कि जिसके सामने शायद चौथा अंश भी यह पृथ्वी न हो। असख्याते द्वीप समुद्रोमें एक स्वयंभूरमणसमुद्रका ही विस्तार इतना बडा है कि सारे द्वीप समुद्रका विस्तार मिलाकर भी उतना बडा नहीं है और जो बाकी द्वीप हैं उनको मिला दो तो सारे द्वीप मिलाकर कह सकते है कि समस्त जल भागके चौथाई हिस्सा भी यह पृथ्वी नही है। जलकी अपेक्षा वायु सूक्ष्म है। तो जल उतना व्यापक नही जितनी कि

वायु । जहाँ जल है वहाँ भी हवा है और जहाँ जल नही वहाँ भी हवा है । पृथ्वीमे भी हवा है, पृथ्वीसे बाहर भी हवा है, और हवासे सूक्ष्म है आकाश । हवा भी उतनी व्यापक नही जितना कि आकाश । भले ही यह हवा तीनो लोको को घेरकर गर्वके साथ चारो तरफ अपना प्रताप फैलाये हुए है— *तनुवातवलय* है, घनोदधि वातवलय, घनवातवलय । तिस पर भी वह आकाशकी होड नही कर सकता । उससे बाहर भी आकाश है जिसे अलोकाकाश कहते हैं । और आकाशसे सूक्ष्म है ज्ञान । तो यह ज्ञान सारे लोकमे भी फैला; अलोकमे भी फैला और फिर भी इसकी स्प्रिंग इतनी मजबूत है कि यह भूखा ही रहता है । इतना लोकालोकका ज्ञान कर लेने पर भी इसकी भूख नही मिटती अर्थात् ऐसे ही अनेक लोकालोक होते तो वे भी सब ज्ञानमे आ जाते । ज्ञानके कुछ अविभाग प्रतिच्छेदो ने इतना काम कर डाला, ऐसा विष्णु यह ज्ञान है । बुद्ध जो ज्ञानमय हो सो बुद्ध वह है आत्मा । हरि— जो पापोको हरे सो हरि, वह है आत्मा । आत्मा ही देवता है, आत्मस्वभावमे मग्न होने पर आकुलता नही रहती ।

(११) प्रभुको निरखकर शुद्ध चैतन्यस्वरूपको निरखनेमे प्रभुभक्तिकी सफलता— प्रभुस्वरूपको निरखनेका प्रयोजन है *परमात्मतत्त्वका दर्शन*। पर्यायशुद्ध चेतनका परिणमन है स्वभावके अनुरूप, क्योकि वह परिणमन है स्वप्रत्ययक । ऐसे शुद्ध आत्माको निरखनेपर चैतन्यस्वभावका परिचय होना बहुत सुगम है । परमात्माका वास्तविक परिचय होनेसे आत्मतत्त्वका परिचय होता है, ऐसे ही आत्मतत्त्वका परिचय होनेपर परमात्माके स्वरूपका परिचय होता है । परमात्माका अभिवदन और आत्मतत्त्वकी उपासना ये दोनो स्थितियाँ होती रहे एतदर्थ 'ॐ नमः शुद्धाय ॐ शुद्ध चिदस्मि' ऐसी वदना बनायें । यह तो है परमात्मस्मरणपूर्वक आत्मस्मरणकी बात । अब शुद्ध अतस्तत्त्वका स्वरूप पहिचानकर अपने आपको शुद्ध अतस्तत्त्वरूप भावित करके अपनेको शुद्ध चिन्मात्र अनुभवनेके पौरुषमे ॐ नमः शुद्धाय, ॐ शुद्धं चिदस्मि ऐसी उपासना बनायें ।

मै ज्ञानमात्र हूं, मेरे स्वरूपमें अन्यका प्रवेश नही, अतः निर्भार हूं ।

(१२) ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वकी निरखमे क्लेशका अभाव—मैं ज्ञानमात्र हू, इसका जितना अधिक मनन और इसरूप अपने ज्ञानका भवन होगा वही मोक्षमार्ग है, वही शान्ति का उपाय है, वही समाधिका मार्ग है । मैं ज्ञानमात्र हूं । मात्रका अर्थ है सिर्फ, सिर्फ यही यही, अन्य कुछ नही । ज्ञान ज्ञान ही मैं हू । आत्मा आकाशकी तरह अमूर्त है, निर्लेप है । इसमे किसी परका सयोग नही । ऐसा होनेपर भी आज जो दशा यह दिख रही है कि सयोग मे पडा, शरीरसे बाहर निकलकर बैठ नही सकता, परतन्त्र है, बन्धन है, दु.ख है, ये सब

किस प्रकार हुए ? तो जैसे एक तो होता है बन्धन और एक होता है खुद बँध जाना। तो परकी ओरसे तो इसका बन्धन नही है, परतंत्रता नही है; क्योकि यह अमूर्त है। अमूर्त अमूर्तको बांध नही सकता, अमूर्तको मूर्त बांध नही सकता। जैसे आकाशको कोई अमूर्त द्रव्य नही बांधता और मूर्त भी नही बांधता। तो कोई परपदार्थ मेरे आत्माको बांधता नही, किन्तु यह मैं अज्ञानवश परमें रमकर, परका स्नेह रखकर बँध जाता हू। यह ही आत्मा परदृष्टि करके बँध गया है। अब प्रश्न यहां भी होगा कि ऐसा अपने आप जीव क्यो बँध गया ? जब यह स्वरूपतः अद्वैत है अपना आत्मा है तो अपनी मर्जीसे भी क्यो बँध गया। क्यो मर्जी की ऐसी ? तो उत्तर तो आना ही पड़ेगा कि यह निमित्तनैमित्तिक योगकी बात है। अब इन सारे दद-फंदसे छूटनेका उपाय क्या है ? किसी परपदार्थका अनुग्रह करें, निग्रह करे, बिगाड सुधार करें, आश्रय लें, ये दुःख छूटनेके उपाय नही हैं। केवल एक ही उपाय है दुःखसे छुटकारा पानेका कि मैं अपनेको यह समझ लूं कि मैं ज्ञानमात्र हू। प्रयोग करके भी देखो। जब यह समझ रहे हों कि मैं मनुष्य हू, अमुक हू, अमुक नामका हू, ऐसी पोजीशनका हू तो उसके अनुरूप विकल्प होते और इसको दुःखी होना पडता, और समझ जाय कि मैं तो ज्ञान ज्ञानमात्र। जैसा मैं हू वैसे सब हैं, जैसा सबका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है। ऐसा जब ज्ञानमे आता है तो चूंकि विशेषता न आयी, सर्व समता हुई, वहां क्लेशका नाम नही रहता। मुक्ति पाना एक सर्वोत्कृष्ट वैभव है, किन्तु मुक्तिका पाना यो मोहके ढगोसे न होगा। जिसने अपने श्रद्धा बलसे समस्त परपदार्थोंसे उपेक्षा कर लिया, जिसे कहेगे कि परमाणुमात्र भी राग न रहा, ऐसा एक आन्तरिक प्रयत्न कर लिया तो मुक्तिका मार्ग मिलेगा। उसमे एक ही निर्णय है। कुछ यह भी करें, कुछ वह भी करे, कुछ स्वाध्याय भी करें, कुछ बच्चोंसे मौज भी रखें, ऐसी सब तरहकी बातोंसे मार्ग न मिलेगा। उसके लिए निर्णय एक ही है—सबसे कटकर ही रहना। अपनेको विविक्त ही रखना, अपनेको ज्ञानमात्र निरखना, सबसे निराला देखनेका प्रतीक है ज्ञानमात्र निरखना। केवल ज्ञान ज्ञान ही मैं हूं, ज्ञानसिवाय मैं और कुछ नही। ऐसे अनुभवमे, ऐसी बुद्धिमे सर्व इच्छायें दूर हो जाती हैं। मैं ज्ञान ज्ञान ही हू, ज्ञान सिवाय और कुछ कर सकता नही, ज्ञानसिवाय कुछ भोग सकता नही, ज्ञानको छोड़कर रह सकता नही। ज्ञान ही ज्ञान मेरा स्वरूप है। ज्ञान ही वैभव है, ऐसा अपनेको मात्र ज्ञान ज्ञान रूप ही निरखनेमें आये तो उसकी सर्व प्रवृत्तियोंमे अंतर आ जाता है और एक यह ही कला न हो पायी तो बाकी जितनी कलायें हैं वे सब बेकार हैं।

(१३) एकत्वविभक्त ज्ञानस्वरूपके अवधारणकी महिमा—इस ज्ञानमात्र अनुभवका किन्हीं दार्शनिकोने आनन्दानुभव नाम दिया, किन्हीं दार्शनिकोंने मात्र विज्ञान नाम दिया,

और किन्हीं दार्शनिकोंने शून्य नाम दिया। यद्यपि यह अनुभवशून्य नहीं है, लेकिन इसमें रागद्वेष विकल्प आदिक रंच नहीं, जिनसे कि अपनेको सम्पन्न समझता था वह कुछ नहीं, उनसे शून्य हो गया है। और जो कुछ है वह बतानेमें नहीं आता, अतएव उनकी दृष्टिमें शून्य ही रहा। जिसने मात्र विज्ञान माना ज्ञानाद्वैत उन्होंने आत्माका जो एक असाधारण गुण है उसका ऐसा एकान्त किया कि एक तत्त्व ही ऐसा गढ़ दिया। और कुछ नहीं, पुद्गल नहीं, भौतिक नहीं, भीत नहीं, लोग नहीं, गुरु नहीं, शिष्य नहीं, यह तो एक भ्रमका ख्याल है। ज्ञान ही ज्ञान है। जैसे स्वप्नमें सारी चीज समझमें आती है, लेकिन है कुछ नहीं, इसी तरह ज्ञानतत्त्वमे भ्रष्ट होनेपर ये सारी चीजें समझमे आती है, और है कुछ नहीं। इतने एकान्तमे चलें, पर जैनसिद्धान्त यह बताता है कि ज्ञान अज्ञान स्व पर अच्छा खोटा चेतन अचेतन सबको ठीक समझ लें। एक इस डरकी वजहसे कि हम अचेतनको मानेंगे तो हम इस चैतन्यस्वरूपकी अनुभूतिमे न आ सकेंगे ऐसा डर मत करें। बजाय डरनेके स्वरूप सत्त्व समझें जिससे कि उपेक्षा हो जाय। समस्त परकी उपेक्षा करें। अपने आपको निरखें कि मैं ज्ञानमात्र हूं बड़ी समस्यायें सामने हैं। शरीरको मच्छर काटे तो ज्ञानमात्र हू यह वातावरण बिगड जाता है। उस मच्छरपर दृष्टि जाती है। तेज भूख लगती तो ज्ञानमात्रको कहीं धर देते हैं। वेदना सही नहीं जाती है। है स्थिति ऐसी, लेकिन यहाँ भी तो अंतर देखा जाता है। कोई मच्छरसे बहुत डरता है कोई कुछ मच्छरोसे नहीं डरता। किसीको भूख भी मानो थोड़ीसी हो तो उसीको बडा रूप देकर परेशान होते हैं प्रयत्न करते हैं और कोई बहुत भूखा रहनेपर भी समतासे रहता है। तो यह अंतर यह प्रमाणित करता है कि जिसकी जितनी अधिक ज्ञानदृष्टि है शरीरको पर मानकर शरीरसे उपेक्षा है उसमे ये अंतर आ गए। यदि बन जाती ऐसी दृष्टि और मदता कि इस ज्ञानोपयोगको मात्र ज्ञानस्वरूप ही रहना तो शरीरको गीदड़ी भी चीथे, सिंह भी खाये तो भी उसका भान नहीं होता। अपराध तो अपना है कि इस शरीरमे आत्मबुद्धि बनायी या कुछ ज्ञानदृढतामे शिथिलता लायी तो अपने आप ही दुःख होगा।

(१४) दुःखसे छुटकारा पानेका उपाय ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वका अनुभव—दुःखसे मुक्त होनेका उपाय यह आराम नहीं, ये संसारके क्षणिक सुख नहीं, पचेन्द्रियके विषय नहीं, मानका विषय नहीं, कीर्तियश प्रतिष्ठा आदिक ये सब दुःखोसे छूटनेका उपाय नहीं, यह सब कहलाता है उपाधि। मोहमे लोग उपाधिको तरसते हैं और उपाधि शब्द सुनकर, अपनेमे उपाधि लगाकर खुश होते, लेकिन उपाधि क्लेश नामको सार्थक करने वाली है। उपाधिका अर्थ है—उप आधि, आधेः समीपं इति उपाधि, आधि मायने मानसिक क्लेश। मानसिक

क्लेशका जो प्रतिनिधित्व करे उसका नाम है उपाधि । जो भी परतत्त्व है, अनात्मतत्त्व है वह सब उपाधि है । उसका लगाव कष्टका ही हेतुभूत है । तो जिसने अपने भीतर इतनी दृढ़ता कर ली हो कि समस्त अनात्मतत्त्वोसे मेरा कटाव है । मैं ज्ञानमात्र हू, अन्य जीवोकी दृष्टिमे वह पागल है, क्योकि दुनियाके लोगोसे उसका मेल खाता नही, ऐसा देखकर भी कुछ विकल्प न लायें । कोई न पूछे तो मत पूछो, मुझे मोहियोकी सुमारीमे नही रहना है, मुझे तो प्रभुको सुमारीमे आना है । यहांसे तो नाम कटाना है । ससारी गुटमे से हमको नाम कटाना है और परमात्माके गुटमें अपना नाम लिखाना है । तो जिससे नाम कटाना है उसमे मोह हो, राग हो, लगाव हो तो ये तो कटानेके लक्षण नहो । किसी संस्थाके उद्देश्यका पूरा पालन करें तो उस सस्थासे नाम कैसे कटेगा ? यह ससार मोह सस्था है और इसका उद्देश्य है कि परपदार्थमें मोह रागद्वेष करना, इन्द्रियके विषयोमे प्रीति करना यश कीर्ति मनोज्ञ विषयोको बढावा देना यह इसका कार्य है, उद्देश्य है । और इसके मेम्बर है अनगिनते जीव । अब इस संसार संस्थामे उद्देश्योका इस ईमानदारीसे पालन करते रहे और चाहे कि यहासे नाम कट जाय तो कैसे कट सकता है ? उल्टे चलें तो नाम कटेगा, नही तो न कटेगा । इस संसारसस्थाके जो उद्देश्य हैं उनका उल्लंघन करें, ये मेम्बर फिर न चाहेगे उसे । यह तो हमारे ढगसे रहता ही नही, और उसको पागल कहेगे, ऐसा कटाव कर सकनेकी हिम्मत है तो मोक्षमार्गपर नाम लग जाय । और इतना कटाव करनेकी हिम्मत नही है श्रद्धामे तो मोक्षमार्गका नाम मत लीजिए, नही तो ये संसारी मेम्बर रुष्ट हो जायेंगे तो घरमे रहना भी कठिन होगा और बाहर कुछ मिल नही रहा । तो मुक्तिमार्गमे लगनेके लिए श्रद्धामे पूर्ण रूप से कटाव होना चाहिए था कि मैं ज्ञानमात्र हू, अन्य रूप हू ही नही, यह स्वाधीन काम है । इसमे कोई दूसरी बाधा डाल सकने वाला नही है । मान लो कमजोरी है, घरमे रहना पडता है, पिताने या किसीने जबरदस्ती की कि तुमको यहाँ ही बैठना होगा, तुमको यह ही काम करना पडेगा, बैठे है, कर रहे हैं, तो इस श्रद्धामे कोई जबरदस्ती नही कर सकता कि तुमको यह श्रद्धा करनी होगी । इसपर किसीको जोर नही । परिस्थितियाँ अन्य बातोमे विवश करें, पर श्रद्धा हटानेके लिए कोई परिस्थिति विवश नही कर सकती । खुदमे ऊधम मचावें तो यह श्रद्धासे बिगडेगा । दूसरा कोई इसकी श्रद्धाको नही बिगाड सकता ।

(१५) **देहकी अशुचिताके ध्यानका अन्तस्तत्त्वके दर्शनकी दिशामे सहयोग**—भैया ! अब अन्तस्तत्त्वका करिये अनुभव । श्रद्धा बनाओ कि मैं ज्ञानमात्र हू । ऐसी श्रद्धा बनानेके लिए एक यह भी उपाय करिये कि इस शरीरका सही दृश्य ध्यानमे लायें । सबसे अधिक ममता जीवको शरीरमे होती है । और शरीरकी ममताके आधारपर ही वस्तुओमे ममता

होती है। तो देहमे ममता न रहे, यह देह न रुचे। इसके लिए कुछ देहका ऊपरी रूप भी देखिये। इस मनुष्यको शृङ्गारको क्यो जरूरत पडी ? पशु आदि जीवोको देहके शृङ्गारकी कुछ आवश्यकता नही देखी जाती। जो जैसा है वैसा है। यहाँ जो व्यग्रता लग रही है, इस का कारण है कि यहाँ द्वन्द्व मचा है। शरीर तो अपवित्रताके लिए होड कर रहा है और यह जीव शरीरके प्रति रागके लिए होड कर रहा है। इन दो मे होड मच गई। जीव इस शरीरसे राग करनेमे बढना चाहता और शरीर अपवित्रतामे बढ रहा, तो इस अपवित्रताको ओझल करनेके लिए इस जीवने उपाय निकाला शृङ्गार जिससे कि कुछ थोडा नजरसे तो हट जाय इसकी अपवित्रता। मुखमे क्या भरा, नाकमे क्या भरा, इस देहमे क्या भरा ? पर यह बात, ये अशुचिताकी बातें ध्यानमे न रहें और यह ठीक जचने लगे तो नाकमे कोई लडी पहिन ली, दो मोतीके दाने लगा दिये तो चमकती तो यह मोती है, नाक नही चमकती, पर वे अपवित्र चीजें ध्यानमे न रहे तो इस अचेतनको कृपासे इस शरीरकी भी कुछ शोभा जंचने लगी। यह उद्यम किया गया। बढ़िया बढिया चमकीले वस्त्र पहिनना, शरीरमे चमकीलापन नही है, वस्त्रमे चमकीलापन है, वस्त्रके रग चमचमाहट इनसे शरीरकी अशुचिता का ध्यान बदल जाय और ये भी चमकीले जचने लगें, यह ह तो उद्यम है। शरीरमे क्या रखा ? भीतरमे निहारो, हड्डी, मास, मज्जा, खून, चमड़ी और उसके ऊपर वे रोम। अब ये रोम कहाँ हटायें। खूनका विकार है बाल, इन्हे कहाँ हटायें ? तो इसका तो कोई उपाय है नही तो इन दोनोन उपाय बना लिया स्त्री पुरुषोने कि चलो और उपाय तो बनता नही इस शृङ्गारमे कुछ मन भर लेंगे, इस देहकी अपवित्रताका उपयोग बदल जायगा, लो यह शृङ्गार तो धोखा हो गया।

(१६) मोहकी अपवित्रताका प्रभाव—देखो शरीरकी सच्चाई दृष्टिमे लो। जिस शरीरमे हम रह रहे उसकी भी सच्चाई देखो जो शरीर दिख रहे है उनकी भी सच्चाई देखो। इस शरीरमे जीवके सबंध बिना अशुचिता कुछ नही। अचेतन है, जड़ है, अपवित्र है अशुचि है, और इस शरीरको मानो गाली दो चाहे यह शरीर अपवित्र है, लेकिन अपने आप खराब नही, आहार वर्गणाओसे ही तो शरीर बना, अचेतन कोई अपवित्र नही। इन आहार वर्गणाओको इस मोही जीवने ग्रहण किया, तो इन पवित्र वर्गणाओका जिनमे मांस नही, इन आहार वर्गणाओको अपवित्र किया गया है। अगर कोई ढगका न्यायालय होता, शरीर और जीव इन दोनोका मुकदमा चलता तो अपराध जीवका ही माना जाता। दण्ड जीवको ही मिलता। शरीरका तो सीधा बयान है कि साहब जब तक यह नवाब साहब न आये थे, यह जीव न आया था तब तक हम बहुत अच्छे थे, आहार वर्गणायें। मुझमे मास न था,

कुछ गंदी चीज न थी, पुद्गल था, परमाणु था, स्कंध था, जब यह आया तो उसके आते ही पहले तो मुझमे दो टूक पड गए। हम सब एक रस थे, आहारवर्गणायें सब एकरस थी। इस दुष्टके आनेसे मुझमे दो फाटे पड़ गए। कुछ तो बन गए नम्र और कुछ रह गए कठोर। कुछ बन गए गीले और कुछ बन गए रूखे। अब इस आधारपर जो सबसे पहले यह भेद डाला इस कूटनीतिज्ञने, उसके बाद फिर ऐसा भेद पड़ता गया कि वह सब अपवित्रताका रूप आ गया। देखो मुझमे अपवित्रता आयी तो इस मोही जीवके सम्बधसे आयी, इसलिए यह जैसे "अहाना है कि—उल्टा चोर कोतवालको डाटे" और अहाना है—"राहमे हगे आँख दिखाये।" तो ऐसे ही इस जीवने हमारी ऐसी बरबादी की, हमको ऐसा अपवित्र कर दिया सो अशुद्ध अपवित्र अशुचि भवनमे जुलम ढाने वाला यह जीव है और यह जीव उल्टा हमारी बदनामी कर रहा है यह शरीर अपवित्र है तो यहां भी सघर्षमे देखो तो मूलमे यह मोह अपवित्र है। और उन मोही जीवोमें भी स्वभाव और विभाव ये दो वादी प्रतिवादी बन जायें तो निर्णय होगा कि जीव अपवित्र नही। स्वभाव अपवित्र नही। यह विभाव, यह मोह ये परिणतियाँ य अपवित्र है, लेकिन ये परिणतियाँ स्वतत्र तो नही, स्वय सत् तो नही। सत् तो एक ही है। केवलद्रव्य। न तो गुण सत् है, न पर्याय सत् है। सत् तो एक हे वस्तु, वह वस्तु गुणपर्यायात्मक है, गुणसदश है, पर्यायसदंश है, सत् एक वस्तु है। उस वस्तुमे भी तीन भेद पडते हैं। द्रव्य गुण पर्याय तो तीन अंश है और इसी कारण कहा गया कि द्रव्य गुण पर्याय समवस्थित अर्थं है। तो पर्याय स्वतत्र सत् नही है, द्रव्यका ही अश है इसलिए पर्याय अशुद्ध है, इसको कहे तो द्रव्य अशुद्ध है यह कहा जायगा। अब द्रव्यका जो स्वभाव है उस स्वभावकी दृष्टिसे कहा जायगा कि यह अशुद्ध नहीं है। उस ही स्वभावको नजरमे लेकर अनुभव करना कि मैं ज्ञानमात्र हू।

(७) **ज्ञानस्वरूपकी निर्भारता**—इस ज्ञानस्वरूपमे किसी अन्यका प्रवेश नही है। प्रवेश हो तो ज्ञानका स्वरूप नही बन सकता। जैसे आकाशमे किसी चीजका प्रवेश नही। यद्यपि ऐसा दिखता है कि आकाशमे तो अनेक द्रव्योंका अवगाह है, वह एक बाहरी दृष्टिसे दिखता। परमार्थसे देखे तो आकाश स्वरूपमे किसी अन्यका प्रवेश नही। यदि प्रवेश हो तो आकाश ही न रहेगा। मैं ज्ञानस्वरूप हू, मेरे ज्ञानस्वरूपमें किसी अन्य वस्तुका प्रवेश नही। अहो फिर मुझपर भार ही क्या है ? कुछ भार नहीं, कुछ मेरेपर वजन ही नही आता। ज्ञानमात्र हू, उसपर कुछ बोझ ही नही लग पाता। पर जो अपनेको बडा भारवान अनुभव करते उसका कारण है विकल्प। विकल्प होनेसे अपनेको भारसहित अनुभव किया जाता है। मुझपर गृहस्थीका बडा भार आ गया। पिता गुजर गया, माँ गुजर गई, सारा भार मेरेपर

आ गया। क्या अर्थ है ? याने जो छत है, भीत है, लोग हैं, ये सबके सब इस ज्ञानपर आ गए क्या ? इस ज्ञानके टूक हो गए क्या ? इसका विकल्प किया, यह भी सम्हालना, यह भी सम्हालना, इसको निभाना, जहाँ ज्ञानमे भीतर विकल्प मचे, ज्ञान गडवड हुआ, विकल्पका भार आ गया, इसमे भार आता है तो विकल्पका और विकल्प बनता है परको अपनानेमे, परका अपनाना छोड दें और स्वयको ज्ञानमात्र अनुभव करें तो वहाँ भारका कोई नाम नही। मैं ज्ञानमात्र हू, मेरे स्वरूपमे अन्यका प्रवेश नही, अतः निर्भार हू। यह ही यह ज्ञान-स्वरूप दृष्टिमे आय, बाहरमे कुछ चाह न जगे, मैं ऐसा समझता हूं, यह भी बतानेका, दूसरो को जतानेका भाव न जगे। इतना तक कटाव हो तो खुद खुदमे रमनेका अवसर पा सकते है। आप सोचेंगे कि शास्त्रसभा, तत्त्वचर्चा, स्वाध्याय ये उन्नतिके साधन माने गए तो क्या ये मिथ्यात्व भरे है ? नही। उन्नतिके साधन है, मगर इन सब बातोमे इस ज्ञानीका लक्ष्य रहता है कि इस माध्यमसे मैं अपने आपकी बात बोलूँ, सुध लूँ और अपनी दृष्टिको स्वच्छ बनाऊँ और अपने भीतरमे काम निकालूँ, यह अवसर है सारी तत्त्वचर्चामें, प्रवचन बोलनेमे, लेखन करनेमे। अगर दूसरोको यह जतानेका भाव है कि लोग समझ जायें कि हां हमने ठीक समझा है तो ऐसा अगर जतानेका कुछ भी भाव है तो वह मिथ्यात्वका अंश है। किसको जताना ? कदाचित् ऐसा हो सकता कि कोई ज्ञानी पुरुष मिला तो अपनी कोई बात ठीक करनेके लिए प्राप्त कर ली जाय, वहांपर भी इसकी स्वयको ईमानदारी है। कल्याण इस गुप्तका होना है। कल्याण भी खुद गुप्त स्वरूप है। कल्याणकी विधि भी गुप्त है। गुप्तको गुप्तमे गुप्तका लाभ लेना है। उसके लिए बनावट, दिखावट, सजावट, मिलावट मोह राग-द्वेप आदि ये सब बातें विघ्न है। विघ्नोसे दूर रहकर निर्भार गुप्त ज्ञानमात्र अतस्तत्त्वका अनुभव करना चाहिये।

(१८) सर्व होनहारोमे ज्ञानवैभवका आधार—जीवका वैभव है ज्ञान। जीवको सुख दुःख होता है ज्ञानके विपरिणमनसे। छुटकारा है तो ज्ञानकी समीचीनतासे। इस कारण अनेकानेक उपाय करके ज्ञानको सही बनायें और अपने आत्माको समस्त दुःखोसे छुटकारा देनेका उपाय सिवाय तत्त्वज्ञानके और कुछ न होगा। उसीकी दृढता, उसीका उपयोग, उसीमे रमण इसीको कहते है सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। तो वह तत्त्वज्ञान बना कैसे, इसके लिए जैन शासनका एक उपहार है स्याद्वाद। वस्तुकी परीक्षा अनेक दृष्टियोसे करलें। चूंकि प्रत्येक वस्तु सदा रहती है और उसमे प्रतिसमय नई नई हालत बनती है। तब दो बातें तो मानना आवश्यक ही होगा—सदा रहना और प्रति क्षण नया-नया होना, इन दो बातोसे अलग रहकर किसी तत्त्वका अस्तित्व नही रह सकता। तो जो कुछ भी है उसमे ये दो बातें अवश्य

ही पायी जाती हैं। इस ही को जैन शासनके शब्दोमे कहा गया है—द्रव्य और पर्याय। प्रत्येक वस्तु द्रव्यपर्यायात्मक होती है। तो कोई केवल द्रव्यदृष्टिका एकान्त करके वस्तुको समझना चाहे तो सही सही न समझ सकेगा। कोई पर्यायका एकान्त करके वस्तुस्वरूप समझना चाहे तो नही समझ सकता, ऐसा किया है अनेक दार्शनिकोने जैसे केवल द्रव्यदृष्टिका एकान्त किया है तो उस एकान्तमे यह समझमे आया कि एक ब्रह्म है, अपरिणामी है, सर्वथा निर्लेप है, प्रभाव हीन है, तो किन्हीने पर्यायका एकान्त किया तो उनको समझमे आया कि प्रति क्षणमे नया आत्मा बना करता है। जो पहले है सो बादमे नही रहता। जैसे कोई किसी पुरुषका परिचय पाये वहाँ कोई बताये कि यह तो पिता ही है तो उसका मतलब हुआ कि सभीका पिता ही है ऐसा अगर कोई समझेगा तो वहाँ तो लडाई छिड जायगी। कोई कहे कि यह तो पुत्र ही है तो भी परिचय नही मिलता। जब नाम ले ले कर, अपेक्षायें लगाकर बोलेंगे—इसका पुत्र है, इसका पिता है, अमुक गाँवका है, अमुक व्यापार करता है, अनेक दृष्टियाँ लगाकर बतायेंगे तो पूरा परिचय होगा। इसी तरह वस्तुका पूरा परिचय अनेक दृष्टियोसे होता है। स्याद्वाद यह एक अलौकिक ढंग है भगवानका बताया, प्रभुका उपदेशा, जिसके बिना हमारा न लोकमे गुजारा न धर्ममे गुजारा। तो ऐसे स्याद्वाद शासनको हमने पाया है तो उसका सदुपयोग करें। वस्तुस्वरूपका निर्णय बनायें।

(१८) अहिंसामें तत्त्वज्ञानकी उपयोगिता—देखो तत्त्वज्ञानका प्रयोजन है अहिंसा। यह जीव कुछ भी विकार न करे, कोई रागद्वेष हममे न जगे और यह सहज जैसा है अपने आपमे बस जाय, बस यह ही ज्ञानका उत्कृष्टका फल है। जो धनकी होड करे, इज्जतकी होड करे, लौकिक बातोकी होड करे वह बिल्कुल फिसड्डी हो गया और जो एक आत्मदृष्टि करे, अपने स्वरूपमें मग्न होनेका पौरुष बनाये, धुन बनाये वह पवित्र आत्मा ससार सकटोसे छूटेगा, पवित्र बनेगा। तो करने योग्य काम यह ही है। बाहरी बात जानें, पर हमारा अधिकार ही कुछ नही, बाह्यका निग्रह अनुग्रह मेरा कर्तव्य नही है। यह तो उदयानुसार थोडेसे ही पौरुष मे स्वय होता है तो तत्त्वज्ञान करे स्याद्वादका उपाय बनाकर और उसके फलमें अहिंसामय अपनेको बनाओ किसी भी जीवका बुरा मत हो, सब जीव सुखी शान्त हो, ऐसा मन बनाओ, इसमे कुछ आपका बिगडता है क्या ? ···शान्ति मिलती, आनन्द मिलता। लेकिन यह भी कठिन लगता मोहियोको। कषायसे कितना प्यार है मोहियोको कि जिस किसी पुरुषपर कषाय उत्पन्न हो गई हो उसके प्रति बुरा विचारना, उसका बुरा करनेकी भावना चित्तमे आने लगती है। कितना ही समझाये कोई कि किसी भी परका बुरा न विचारो, इससे तुम्हे कुछ मिलता भी नही है, उल्टी बरबादी है, मगर कषायके वशमे इतना है यह प्राणी कि इतना भी क

वर्तमानमे असमर्थ हो रहा कि यह सबकी भलाईकी बात सोच ले, मनसे सबके हितका चिन्तन बनावे। अहिंसाका व्रत पालनेके लिए पहली सीढी जिसके बिना कुछ भी आगे कदम नही बढ सकता, यह है कि सबका भला विचार बनावें। सब सुखी हो और जितनी सामर्थ्य है दूसरे के दुःखके निवारणमे लगें। देखो मार्ग बिल्कुल साफ है। चलनेका जिसका भाव नही है उस को मार्ग दिखता नही, जिसका चलनेका भाव है इस असार ससारसे निवृत्त होनेका भाव है और उसको हृदयसे भी सब साफ दिख जायगा कि हमारा कर्तव्य यह है। अहिंसा सर्व प्राणियो का भला सोचना। सब सुखी हो, ऐसी जिसकी भावना रहेगी वह भी सुखी रहेगा और वर्तमानमे भी समझमे आयगा कि यदि किसी भी क्षण मनमे यह भावना जगती है तो वह खुद दुःखी है तो उसको यह भावना जगती है कि मैं इसे दुःख पहुचाऊं। खुद दुःखी हुए बिना कोई दूसरेको दु.ख पहुचानेकी भावना बना ही नही सकता। और फिर इसमे दुःखी करनेके उपायमे प्रयत्न कर-करके यह दुखी हो जाता। तो जिस बातमे पहले दुःख, बाद मे दु.ख उस काममे हाथ ही क्यो लगाते अर्थात् किसी भी जीवके बारेमे बुरा ही चिन्तवन क्यो करना, सबका भला विचारें।

(२०) ज्ञानीके अहिंसाभावकी नैसर्गिकता—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी योद्धा जो कि संग्राममे युद्ध कर रहा हो उसका भी भीतरमे यह भाव रहता है कि मेरे द्वारा किसी भी जीवका अक-ल्याण न हो। ऐसा सुनकर लोग हैरान हो जायेंगे कि कैसे हो सकता है कि दूसरोसे लड रहा और दूसरोके अकल्याणकी भावना नही है मनमे। भीतरी विश्वासकी बात सही हो और परिस्थितिवश चेष्टाएँ करनी पडती हो ऐसी स्थितियाँ होती हैं कि नही? अनेक उदाह-रण मिलेंगे। तो चूकि उन उदाहरणोमे कोई जान (प्राण) जानेकी नौबत नही है सो लोग झट समझ लेंगे और यहाँ युद्धमे जान (प्राण) जानेका ख्याल है सो समझमे न आयगा। मगर रीति नीति पद्धतिका मिलान करे तो समझमें आयगा। लडकियोका विवाह होता है, वे अनेक बार स्वसुराल हो आती हैं, मानो १० बार स्वसुराल आयी गई, ११वीं बार जाना है, तो यद्यपि उनके चित्तमे यह बात रहती है कि अब तो बरसातके दिन हैं, कही घरमे पानी न चू जाय, गेहू वगैरह न खराब हो जायें, झट घर पहुंचना है, यो उनके मनमे स्वसुराल जानेकी उमग है, उत्साह है, फिर भी जाती है तो उन्हे परिस्थितिवश रोना पडता है, क्या करें? परिस्थिति रोनेको बाध्य करती है। ऐसे ही यहाँ समझिये कि कोई ज्ञानी योद्धा युद्धमे सग्राम करता है तो भी उसके मनमें यही भावना रहती है कि किसी भी प्राणीका मेरे द्वारा अकल्याण न हो। हाँ परिस्थिति उससे युद्ध कराती है। इन स्थितियोका प्रमाण यह है कि जब कभी थोडा अवसर मिलता है तो वह उसकी भलाईके उपाय बनाता है, बचानेके उपाय

बनाता है। धर्मके प्रतिकूल उसकी चेष्टा नही रहती। तो घरमे गृहस्थीमें कही भी रह रहे हों तो वहाँ कोई कठिन परिस्थिति नही है। सबका भला विचारे और इससे बढकर फिर यह कदम है कि किसी भी चेष्टामे राग मत करें। बस यह ही अहिंसाका रूप है। अपने आपको न सताना सो ही वास्तवमे अहिंसा है। जो रागद्वेष मोह करता है वह अपने आपको झुलसा देता है, बरबाद कर देता है सो उसकी यह हिंसा है। अपनेको सत्य सही प्रसन्न रखनेका नाम अहिंसा है। वैषयिक सुखोमे राग हो तो उसमे सत्य प्रसन्नता तो नही रहती।

(२१) अहिंसाकी आराधनामें कष्टसहिष्णुताका अद्भुत सहयोग—हम सबका कर्तव्य है कि हम अहिंसासे अपनेको पवित्र कर दें, इन सब उपायोपर कौन पुरुष चल सकता है जिसको कष्ट सहनेका अभ्यास हो। जो जरा जरासे कष्टोसे अपनी दुम दबाकर बैठ जाय वह पुरुष क्या आगे बढ सकता है? कष्ट तो माननेकी चीज है। जो जितना मान ले उसे उतना ही कष्ट है। एक ही घटना १० जगह होती है तो कोई अधिक दुःखी होता है, कोई कम दुःखी होता है और कोई दुःखी होता ही नही। क्या बाहरमे कष्ट रखा है? मगर बाहरसे कष्ट होता तो सबको एकसा ही कष्ट होना चाहिए। कोई दुःख मानता, कोई नही, उसका कारण क्या है कि जिसने अपनेमे कष्टके लायक कल्पनायें की वह कष्टमे है और जिसने अपना ज्ञानबल सम्हाला वह कष्टमें नही है, फिर भी समागममे रहकर जो बात आती है कष्टकी उनका कुछ होता तो है प्रभाव, लेकिन उसके सहनशील बनो। जैसे बुन्देलखण्डमे लोग कहते है नखरे करना—कुछ पुण्यका उदय हो—शरीरका नखरा करना, बडी सुकुमालता दिखाना, मान आ जानेका नखरा, दसो बार कोई मनाये, थोडा लोग मनाने लगें, नखरे बन जाते हैं। अरे इस दुःखमयी संसारमे किसपर नखरा करते हो? सब असार बातें हैं। नखरा तो सचमुचका नखरा है। जो खरा नही, जो भला नही, उसीका नाम नखरा है। भला कैसे हो सकता है? तो नखरेबाजी छोड दो, सीधे सरल रहो। अपवादकी कोई बात ही न हो। सब एक समान है। किसीके धन बढ गया तो क्या हुआ? ज्ञान बढ गया तो क्या हुआ? लोग इज्जत करते हैं तो क्या हुआ? अभी तो बन्धन ही बन्धन है। जीवका जो एक स्वतंत्र भाव है उसकी जब तक शुद्ध व्यक्ति नही है तब तक तो जीव संकटमे ही है। नखरेसे काम नही चलनेका। सीधे रहो, काममे जुटो, ज्ञानमे बढो, अहंकारसे हटो तो अपनी भलाईका मार्ग निकलेगा।

(२२) कष्टसहिष्णुता और कषायहीनताका प्रसाद—भैया! कष्टसहिष्णु बनो। कष्टसहिष्णु होनेके साथ-साथ वास्तविक नम्र रहो। कषायोंका परिहार करो। समागममे जो जो भी जीव मिलते हैं वे सब भगवानस्वरूप ही तो हैं। उस भगवत्स्वरूपके सामने गर्व करनेका

अवकाश क्या ? सबका एक ही तो स्वरूप है। पर्यायमें अन्तर है, सो वह कर्मकृत लीला है। उसका ही यह सब रंग है, वह अन्तर पडा है। और जीव जीव ये सब स्वरूपमे एक समान हैं। यहाँ किसपर गर्व किया जाय ? जो गर्व करे वह अज्ञानी। उसको परमात्मस्वरूपका दृढ परिचय ही नहीं तब ही तो गर्व होता है। जो मैं हू सो ही हू। मैं ही महान् हू, बाकी सब तुच्छ हैं, ऐसा किसे गर्व होता है जो अज्ञानी हो, जो जीवमे बसे हुए अन्तः परमात्मतत्त्वको नही निरखता उसे अहकार होता है। जो गर्व करे सो अज्ञानी है। जो किसी जीवपर क्रोध करे, मारनेका संकल्प बनाये वह अज्ञानी। जो उन बाहरी वस्तुओंके सचयके लिए हृदयमे मायाचार करे, छल कपट बनाये वह अज्ञानी। छल-कपट बना-बनाकर भी सफल नही हो पाते। पचासो ऐसे मौके घरमें आते होगे। अनेक प्रकारसे छल-कपट करते, मगर वह काम बाला नही और करीब करीब छल-कपट वाला काम तो बनता ही नही। कुछ बनेगा तो बिगड जायगा। और कदाचित् थोडा कल्पनामे बन गया तो वहाँ तो बिगाड ही किया। जब छल किया, द्वेष किया तो आत्माको हीन बना लिया, पतित बना लिया तो हानि तो तुरन्त हो गई। क्यों किसी बातका छल करना ? मोहका रंग भी इस जीवको बुरी तरह बरबाद करता है। इस वैभवके प्रति, इस धनके प्रति ऐसी तीव्र तृष्णा रहती है कि चित्तमे यह यह निर्णय समाया है कि हम बडे है तो धनके कारण ही तो बडे है, हम सुखी है तो धनके कारण ही तो सुखी है। मेरे पास खूब धन है। अच्छी कमाई है, धन ही मेरा सब कुछ है, ऐसा मनमें विकट तृष्णाका भाव लगा है तो यह लोभका रंग अनादि निधान पवित्र सबल समृद्ध भगवान आत्मदेवका दर्शन नही होने देता। तो कषायोके रंग कम करना, तत्त्वज्ञानकी ओर प्रयास करना।

(२३) आत्मवैभवकी सर्वोपरि समृद्धता—आत्महितकी साधनाके लिए तन, मन, धन, वचन सर्वस्व न्योछावर कर देना युक्तिसे, गुप्तरूपसे, स्थिरतासे, धीरतासे ज्ञानको ज्ञान की ओर लाकर ज्ञानमे ज्ञानको प्रतिष्ठित करना ऐसा अलौकिक काम क्षणभरमे भी बन सके तो वह जीव कृतार्थ हो जाता है। इन सब बातोमे जब उत्साह नही जगता तब यह कर्तव्य है कि हम वर्तमान साधु-संतोंके गुणोका स्मरण करें, इस स्मरणसे फिर उत्साह बन जायगा। फिर मार्गमे अपनी गति बन जायगी। इसके लिए ऋषि संतोके चारित्र जरूर विज्ञात होना चाहिए। उत्साह जगे, प्रेरणा जगे मोक्षमार्गमे लगनेके लिए। तो हम साधु-संत ऋषि जनोकी भक्तिका भाव बनायें, ऐसी प्रभुभक्ति, गुरुभक्ति, आत्मभक्तिका यदि हम पौरुष कर सकें तो तो इस विनश्वर जीवनसे हम कोई अविनाशी चीज पानेका लाभ ले लेंगे। मिटना तो है ही सब कुछ। उसके मिटनेकी बात है तो रहने दो, पर बन सके कुछ अमिट काम पानेका तो

उसमें न रुकना चाहिए। लोग भी तो किसी बड़े लाभमें थोडा खर्च करना पडता है तो करते हैं, तो फिर जहाँ सदाके लिए अलौकिक सुख शान्तिका लाभ मिलना हो वहाँ तो हम तन, मन, धन, वचनको न्योछावर कर डाले तो हमने क्या खोया? क्या दिया, क्या लिया, क्या गवाया। एक बहुत बड़ी सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति करी। तो ऐसा जीवन हमारा पवित्र बीते, पाप में जीवन न जाय, सबकी भलाईका भाव बना रहे और अपने ज्ञानस्वभावकी धारणा, उपासना, आराधना बनती चली जाय, ऐसे क्षण जिसके व्यतीत हो वह पुरुष धन्य है, प्रशसनीय है। करनेका काम क्या है सो समझना चाहिये। अकर्तव्यसे दूर रहे।

(२४) हेय उपादेयका विवेक—प्रश्नोत्तररत्नमालिकामे जहाँ पूछा गया कि हे भगवान—उपादेय किं अर्थात् उपादेय चीज क्या है? तो कहा—गुरुवचन अर्थात् जो गुरुओका वचन है वह उपादेय है। शास्त्रमे, ग्रन्थमे गुरुवचन द्वारा गुरुवोके दर्शन होते है। किसीका दर्शन जब होता है तब उसका अनुभव विचार भी हमारे विचारमे आता कि हम ऐसे हैं। सही दर्शन तो वह है जो गुरु संतोने पाला है। बताया है, आदेश किया, निर्देश किया इसमे कल्याण है वह उपादेय है, उसे मानकर चलना। फिर पूछा कि—किं हेय अर्थात् हेय क्या है? तो अकार्य अर्थात् जो करने लायक नही है सो हेय है। सब लोग जानते है कि क्या है हेय? जैसे कुत्तेको अपने हाथसे आपने रोटीका टुकडा खिलाया तो वह कितनी नम्रता आपको दिखाता है। अपनी पूँछ हिलाकर बड़ी नम्रतासे आपके सामने पेश होता है और आपके द्वारा प्राप्त टुकड़ेको कितनी प्रसन्नतासे खाता है, और जब रसोईघरसे वह रोटी उठा ले जाता है तो कितना कायर सा बनकर किसी कोनेमे ले जाकर छिपकर खाता है। देखो उस कुत्तेको किसी मास्टरने सिखाया तो नही, पर उसे भी यह विवेक है कि चोरीका काम करने लायक नही है और यह ईमानदारीका काम अच्छा है। तभी तो वह कुत्ता चुराकर लाई हुई रोटीको छिपकर एक कायर सा बनकर खाता है और हाथसे दी हुई रोटीको बड़ी शानसे, बड़ी प्रसन्नतासे खाता है। उसकी समझमे यह बात है कि न्याय-नीतिसे मिले हुए टुकड़ेमें पाप नही लगता, और चोरीसे लाई हुई रोटी खानेमे पाप लगता है। तो जो अन्याय है उसे दूर करें, जो अकार्य है सो हेय है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन ५ प्रकारके पापो के त्यागमे आपका समस्त आचरण आ गया। किसीका दिल न दुखावें, किसीका बुरा विचार न करें, अहिंसा बन गई। किसीकी चुगली मत करें, निन्दा मत करें, हितकारी वचन बोलें, सत्य बन गया। किसीकी चीज मत चुरावें, उसको बड़ा दुःख होगा। जिसकी चीज चुराई गई है उसमें हिंसा भी है। सारे पाप हिंसाके कारण हैं। कौन नही जानता कि यह चोरी है। कुशील मत करें। बुरी दृष्टि मत बनावें और लालच मत करें। जिसको यह विश्वास हो

न हो कि जो धन आता है वह सब पुण्य पापका फल है। चाहे ग़रीब हो, चाहे धनी हो, जिसको यह विश्वास नही वह हो तो बडे विकल्प मचाकर सोचता है कि मैंने कमाया, मैंने जोडा, तो भला बतलाओ उसका मिथ्यात्व भी हटा क्या ? और जहाँ मिथ्यात्व न हटा तो वह महापापसे बरी क्या हो ? परिस्थितियाँ कराती है वह बात अलग है, और भीतरसे यदि कुछ ऐसी श्रद्धा बने कि मैं ही पालनहार हू, मैं ही राखनहार हू तो उसके आधारपर उसके कैसे खोटे व्यर्थके बिना मूलके विचार उठते है, तो ऐसे कुविचारोका दूर होना और अपने आपके सहज स्वभावको दृष्टि बनाना।

(२५) रम्य धाम— बडे-बडे पुरुष, बडे-बडे ऋषि, बडे-बडे धनिक लोग सब कुछ त्याग कर, जंगलमें रहकर जिसकी खोज करते हैं, जिसकी छान करते हैं, जहाँ रमना चाहते हैं, समाधिभाव चाहते हैं वह तत्त्व क्या है ? अपना सहज स्वभाव। कोशिश करते हैं। जैसे किसी गरीबको निधि मिल जाय तो अकेलेमे पोटली खोलकर उसे देख देखकर खुश होता है—मेरे पास इतना धन है। यह है, ऐसा है। ऋषिसतोको कोई एक अनन्त आनंदकी निधि मिली है तो उसे वे एकान्तमे खोल खोलकर, देख देखकर, दृष्टियोसे निहार निहार कर प्रसन्न हुआ करते हैं। हालाँकि वे सबके बीच भी अपने भीतरकी निगाहकी गठरी खोलकर देखें तो कोई उसमें बाधा नही डालता, मगर सबके समागमके बीच दिखती भी तो नही है, वह गठरी खुल भी तो नही पाती है। सबके पास लाल है, रत्न है, निधि है, पर गाँठमे बँधी है, उस पवित्र तत्त्वको सर्वंशसे ही बाँध रखा है, गाँठ खोलकर नही देखते हैं और अपनेको ग़रीब समझते हैं। तो कोई दूसरा जो भी आगे बढा है, प्रभु हुआ है, समर्थ हुआ है, ऋषि बना है वह आत्मा ही तो है। अपने आपमें भी तो साहस बनावें कि हम भी बन सकते, प्रभु हो सकते, सर्वज्ञ हो सकते, निर्दोष हो सकते। शर्त यह है कि परका लगाव न होना चाहिए। अब कोई इसीपर हठ हो जाय कि यह लगाव तो हम छोड़ नही सकते और धर्मात्मा बना दो तो यह बात नही बनती। क्यों लगाव नही छोडना चाहते, लगावमे धरा क्या है ? कोई कल्पना है। मान लिया कि मेरा है। अरे वह जीव न आया होता घरमे, दूसरा कोई जीव आया होता तो क्या उससे मोह करते ? मोह करनेकी इसके कुटेव लगी है। कोई निर्णय तो नही है कि यह हमारा है, वह तो तुम्हारा माननेका है। चीजकी ओरसे नहीं है। लगाव छूटे, अपने आपके स्वरूपमे आना बने, इसके लिए तो बहुत प्रसन्न होना चाहिए। किसीका लगाव छूट जाय तो वह दुःखी थोडे ही रहेगा। जिसकी चिन्ता करते उसका तो अपना-अपना उदय है, कर्म है, उसका तो उदयके अनुसार सब बात बनेगा। अनेक घटनायें तो ऐसी हैं कि जब तक कोई घरका बडा लगावमें रहता है, बीच-बीचमें बाधायें डालता है अथवा वह समझता है कि

मैं करता हूं तो अपना खूब काम करता है तब तक घरके बच्चोंका पुण्योदय विकसित नही हो पाता। अनेक घटनायें ऐसी देखनेको मिली हैं और लगाव उन्होंने छोडा है तो उनका पुण्य विकसित हो जाता है, और इतना तो कमसे कम है ही कि जब तक लगाव रख रहा है तब तक वह समझता है कि मेरेको क्या परवाह, मेरा यह बुड्ढा, मेरा यह बाबा हम लोगोंकी बहुत फिक्र रखता है तो हमे क्या करना? स्वय भी पौरुष नही करता तो बताओ निजकी हानि करे, दूसरेकी हानि करे, ऐसे मोहमे नफा क्या पा लिया जाता? सही-सही ढगसे चलें, ज्ञानप्रकाशमें चले कषायोसे हटकर तो आनन्द मानेंगे, कर्म कटेंगे, सुख होगा। उसमे सब भलाई भलाईकी बात होगी। तो दुर्लभ इस जीवनमे आत्माके उद्धारका काम कर ले तो वह तो बुद्धिमानी है और जो मोह मोहमे ही रमकर जीवन गंवाये तो वह सब अपनी बरबादी की ही बात है।

(२६) शाश्वत स्वरूपके आश्रयका कर्तव्य— जो कुछ सुनना है वह इस दृष्टिसे सुनना है कि हमको करनेकी बात सुनाई जा रही है। जो कहेगे वह करनेकी बात है, कर न सकें तो वहां धीरज धरें कि अभी हम कर नही सक रहे, मगर करनेकी बात यह ही है। अगर ससारके दुःखोंसे सदाके लिए छुटकारा पानेकी अभिलाषा है तो करना यह ही पडेगा, उसी विषयमें बोल रहे हैं। और आज क्या, सभी दिन उसी विषयमे बोलेंगे। एक शास्त्र क्या, सभी शास्त्र उसी विषयके लिए हैं, अर्थात् जो आदेश हो रहा है प्रभुका उसपर मैं चलूं और दुःखोसे सदाके लिए निवृत्त होऊं। तो यह देखो कि जगतमे दुःख है कि नहीं? सारा दुःख ही दुःख है। थोड़ी देरको कल्पना करके सुख मान लेते हैं किसी भी संगका, मगर वहां तुरत भी क्लेश है और थोडी देर बाद प्रकट क्लेश आ जाता है। कौनसी स्थिति ऐसी है कि जिस स्थितिमे कष्ट नहीं? केवल एक समाधिकी स्थिति है ऐसी जहां कष्ट नही। मेरेको जितनी भी परिस्थितियां हैं सब कष्टकी परिस्थितियां है। बचपनसे लेकर वृद्धावस्था तक सर्वत्र कष्ट ही कष्ट है। बच्चेको देखो—उन्हें जो चाहे डॉट दे, जो चाहे भगा दे, पैसे जितने मांगें उतने न दें, फटकार दें, चुप करें, तो वे बच्चे लोग मनमे कष्ट नहीं मानते क्या? अरे वे बहुत दुःखी होते हैं, वे सोचते हैं कि यदि हम भी ऐसे ही बडे होते तो ऐसा कष्ट न झेलना पडता। अब जितने बडे हुए वे क्या कष्टमें नहीं हैं? १७, १८, २० वर्षके हुए तो वहां भी कुछ न कुछ विकल्प हो रहे हैं। शादी हो तो वहां भी अनेक प्रकारके विकल्प होते, जरा-जरासी बातमे रूठते। यों रात-दिन कष्ट मानते कि नही? कौनसी ऐसी अवस्था है जहां कष्ट न हों। कुछ और बड़े हुए तो वहां भी अनेक प्रकारकी चिन्तायें आ गईं, जिम्मेदारी आ गई तो वहां भी कष्ट मानते कि नही? एक दृष्टिसे सोचो तो मनुष्य जन्म तो मानों इसलिए पाया था कि

सच्चा आनन्द पायें, आत्माकी सच्ची सुध लें और एकदम फैसला करें कि मैं जो हू, जैसा हूं, वही हूं, वही बनकर रहूंगा।

(२७) विषयविषसे दूर रहनेमें कल्याणका लाभ—भैया! आये तो इसीलिए थे कि मैं सहजस्वरूपकी उपासनामे जीवन लगाऊँगा, मगर करने क्या लगे? कहां फँस गए? कुछ तो जान-बूझकर फसे कुछ परिस्थितियोने फंसाया। तो सर्वत्र दु:ख ही दु:ख है। व्यापार चलता है, बडा फायदा होता है, फिर भी वहां बडा कष्ट मानते हैं, पर वहां समझते नही कि मैं कष्टमे हू। विकल्प तो करता है, हँसता है, वहां भी क्षोभ तो होता ही है, यह क्या कष्ट नही है? एक तो मीठा विष होता और एक कडवा विष होता। मीठा विष खाने मे उसे बुरा तो नही लगता। तो यही सासारिक सुखोकी बात है, वे मीठे विष हैं। विकल्प तो होत, आकुलता होती, सुध भूलते, प्रभुकी याद नही रहती, अज्ञानमे बस जाते, यह क्या कष्ट नही है? वेदना आयी वहां कष्ट, हानि हुई वहां कष्ट, बचपनसे लेकर बुढापा तक कष्ट ही कष्ट देखनेमे आया। वृद्ध हुए तो वहां भी कष्ट। शक्ति नही है कि अधिक खा सकें, मगर दूसरोको खूब खाते पीते देखते तो वहां वह वृद्ध क्या कष्ट नही मानता? इन्द्रियां काम नही करती और चाह बड़ी बड़ी हो रही है। तो क्या वह चित्तमे झुलसता नही है असमर्थ जानकर। बच्चे लोग उसकी बात नही मानते, बल्कि मजाक मानते तो क्या वह बूढ़ा दु:ख नही मानता? कौनसी स्थिति है ऐसी जहां आनन्द मिलता हो? जब यह मनुष्य-जीवन दु:खमय है तो इससे अधिक दु:खमय जीवन तो पशु-पक्षी, कीडा-मकोडा आदिकका है। उनकी तो न कुछ जैसी दशा है। कहां इज्जत, कहा कीर्ति, कहा वे चैनसे रहते? कुछ भी नही है। तो सारा ससार दु:खमय है। तो पहले चित्तमे यह फैसला बनावें कि ससारमे इसी तरह जन्म मरण करके, मोह रागद्वेष करके जरा खाना-पीना और इन्द्रिय विषयोमे राजी होकर और दुर्गतियोमे जन्म ले लेकर रहना है क्या? या इन झंझटोसे छूटकर शुद्ध पवित्र बनकर महत्त्व प्रकट करके सदाके लिए शुद्ध-स्वच्छ आनन्दमय रहना है। ये दो बातें सामने हैं। क्या रहना चाहते सो फैसला कर लो। अगर ससारमे रहना चाहते, जन्म-मरण भोगना चाहते, आज सयोग हुआ तो हर्ष मानते, वियोग हुआ तो कष्ट मानते। हर समय आकुलता मचायी, अगर यह इष्ट है तो यह तो गाडी अनादिकालसे चलती ही आ रही है, वह तो आप कल्पना मूल्यसे खरीद ही रहे हैं। किसीसे पूछना भी नही है, धक्का वाली गाडी चलती ही रहती है। करते रहते हो, करते जावो मोह रागद्वेष इष्ट अनिष्ट बुद्धि, परको अपना मानना, विषयोमे प्रीति, देहको यह मैं हू ऐसा समझना ये सब उपाय इस बातके हैं कि नाना दुर्गतियोमे जन्म लें, मरण करें और जीवनभर इष्टवियोग, अनिष्टसंयोग, शारीरिक वेदना

और आशा, तृष्णा, इनके दु:ख भोगते रहे यदि ऐसा ही चित्तमें है तो उसे उपदेश देनेकी जरूरत नही। इसमे तो सभी अभ्यस्त हैं ही अनादिसे। एकसे एक बढकर गुरु बन रहे हैं, उसे समझानेकी आवश्यकता नही तथा अगर यह चित्तमे आ रहा हो कि हम तो निश्चित तौरसे उपाय करते है कि जिस किसी भी प्रकार मेरेको मेरेमें ऐसी मौज मिले कि जिससे चलकर मैं सदाके लिए जीवनमुक्त होऊँ। यदि ऐसी अभिलाषा है तो उसका उपाय ऋषि जनोंने बताया है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र।

(२८) **संसारवेदनाका मूल भ्रम**—मोक्षमार्गके इस प्रसंगमे उसके विपरीत यह समझिये कि हमको यह सकल दु:ख जो ससारमे लगा है तो किस कारण लगा है? मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रके कारण। इन सबको अगर एकमे बांधो तो कहो भ्रम? जितना दु:ख लगा है वह सब भ्रमसे लगा है। भ्रमके बारेमे गुजराती एक कथानक है ऊँटका। बोलते हैं कि यह तो ऊँटका बँधना है। एक पुरुष २१ ऊँट लिए जा रहा था और बहुत दूर जाना था। रास्तेमे दो तीन जगह ठहरना भी पड़ेगा ऐसा जानकर वह ऊँट वाला ऊँट बांधनेके लिए खूंटे तथा रस्सियां साथ ले गया। भूलसे वह २० ही खूंटे तथा रस्सियां ले गया था। जब वह रास्तेमे शामको किसी गांवमें ठहरा तो सभी ऊटोको उसने खूंटा गाडकर रस्सीसे बांध दिया, इसलिए कि कही भग न जावें। अब एक ऊँट बाकी बच गया। उसके बांधनेके लिए खूंटा तथा रस्सी न थी। सो सभी ऊँट तो आरामसे बैठ गए, पर वह ऊँट जो अभी खूंटेमे बँधा न था वह खडा ही रहा। ऊँट वाला उस ऊँठसे कहने लगा—तू भी बैठ जा! तो वह ऊँट मानो बोला—हम नही बैठते, हमको पहले इन सब ऊँटोकी तरह खूंटा गाड़कर बांधो तब बैठेंगे। तुमने इन सब ऊँटोका तो स्वागत किया और हमारा अपमान किया। जब वह ऊँट न बैठा तो वह ऊँट वाला सोचने लगा कि यदि यह गायब हो जायगा तो क्या करेंगे? सो वह गांवके मुखियाके पास गया, बोला—मुखिया जी, हम बड़ी परेशानीमें है, हमारे २० ऊँट तो खूंटोमे रस्सीसे बँध गए, पर एक ऊँट नही बध सका सो वह बैठता ही नही, क्या करें? तो मुखिया बोला—देखो तुम उसके पास जाकर यो ही झूठ मूठका खूंटा गाडनेका काम कर दो और फिर झूठ-मूठ ही उसके गलेमे रस्सी बांधनेका काम कर दो, वह बैठ जायगा। ऐसा ही किया उस ऊँट वालेने, तो उस ऊँटने यह भ्रम कर लिया कि मैं बँध ग। और बैठ गया। जब प्रातःकाल हुआ तो सभी ऊंटोके गलेसे उस ऊँट वालेने रस्सियां खोली, खूंटे उचकाकर उखाड लिये तो उसके सभी ऊँट खडे हो गए। वह एक ऊँट अभी बैठा ही रहा तो फिर वह पुरुष उस मुखियाके पास गया, बोला—मेरे सभी ऊँट तो खडे हो गए पर अभी एक ऊँट नही खडा हुआ सो कैसे क्या करें? तो उसने उपाय बताया कि देखिये—तुम

उसके पास जाकर झूठ-मूठ ही उसके गलेसे रस्सी डालनेका तथा झूठ मूठ ही खूंटा उचकाकर उखाड़नेका काम करो तो वह ऊँठ खड़ा हो जायगा। उस ऊँट वालेने आकर वैसी ही झूठकी क्रियायें की तो वह ऊँट झट खड़ा हो गया। तो देखिये वहाँ था क्या ? उस ऊँटको कोरा भ्रम ही तो था। न कोई वहाँ खूंटा था, न कोई रस्सी थी, पर झूठ मूठकी उस तरहकी क्रिया कर देनेपर उसने भ्रम कर लिया कि अब मैं बँध गया और अब मैं छूट गया। बँधने का भ्रम कर लेनेसे बैठ गया और छूटनेका भ्रम कर लेनेसे खड़ा हो गया। वहाँ था कुछ नही, केवल भ्रम था। भ्रमसे ही उस ऊँटका बधना और छूटना हुआ, बैठना और खड़ा होना हुआ, इसी तरह भ्रमसे ही हम आपका बधना और छूटना हो रहा है। जैसे वह ऊट बन्धनसे राजी था—ऐसा खूटा मिले, ऐसी रस्सी मिले तब मैं ठीक कहलाऊंगा, तब मैं काम करूंगा बैठनेका। ऐसे ही यह मनुष्य भी सोचता है दूसरोंको देख-देखकर कि मेरेको अगर ऐसा घरका फसना मिले, ऐसा परिवारका बधना मिले तो मेरा मोज है, नही तो मेरेको मोज नही, तो ऐसे ही भ्रमसे हम दुःखी होते, भ्रम मिट जाय तो हमारा दुःख मिट जाय, सर्वत्र आप भ्रमका ही कष्ट पा रहे है यो समझिये।

(२६) भ्रमका परिणाम कष्टका भोग—

भैया ! लगता है ऐसा कि भ्रमकी क्या बात है ? घर भी तो अच्छा है, खेती होती है, काम अच्छा चल रहा है, खूब धन आ रहा है, सब मौज है, काम अच्छा चल रहा है, लोग सोचते है ऐसा मगर हम तो आत्महितकी दृष्टिसे कह रहे है कि परिस्थितिमें करना पड़े तो करें मगर श्रद्धामे तो यह लाना पड़ेगा कि मेरे आत्माकी भलाई तो मेरे भीतरी ज्ञान-प्रकाशसे है और तरह नही है, अन्यथा बताओ—रोज एक किलो खा खाकर समय व्यतीत होता, दूसरा दिन होता फिर वही एक किलो चाहते। मरनेके बाद वहाँ न जाने क्या बन गए, बैल बन गए अथवा हाथी बन गए तो फिर वहाँ क्या हाल होगा ? फिर तो दसों बीसों किलो खानेकी जरूरत पड़ेगी। इतनेसे कममें तो काम न चलेगा। मगर एक जन्म मरणकी परिपाटी ही पसद है तो फिर खूब रागद्वेषादि करते रहो, और यदि इस जन्म मरणसे छूटना है तो उस का उपाय है सम्यग्ज्ञान। देखो नई बात यहाँ हम आप सबके लिए कुछ नही है, सब पुरानी गुजरी बात है। जो कुछ मिलता है खाना पीना रूपया पैसा भोग सामग्री आदि वे सब कय (वमन) की हुई हैं, जूठी हैं। जैसे कोई किसी चीजको खाकर उसका कय (वमन) कर दे तो उसे कोई फिर खाता है क्या ? अरे खानेकी बात तो दूर रहो, उसे कोई फिर छूना भी नही चाहता। तो इसी तरह हम आपने ये सब चीजें भव भवमे खाया और भोगा। कोई ग्राह्य परमाणु नही बचा जिसे स्कन्धरूपमें खाया न हो, भोगा न हो। तो अनेक बार भोगी हुई

चीजे वे सब बमनरूप ही तो है। उसीको यदि रोज-रोज खाते हैं तो भाई घरमें रहते हुए परिस्थितिवश जो बनना है ठीक है, मगर सच्चे ज्ञानमे तो जरा भी कमी न करना चाहिए। वह सम्यग्ज्ञानकी बात जब हमारी सही बने बन जायगी। मगर श्रद्धा और ज्ञान तो हमारा बिल्कुल सही रहना ही चाहिए तो भ्रम छूटता है। भ्रम लगा है चार बातोसे, एक तो अहकार—जो मैं नही हूं उसे मानना कि मैं हूँ वह भ्रम है। जो अनात्माको आत्मा मानेगा उसको तो कष्ट आयेंगे ही। जो मेरी चीज नही उसे श्रद्धामें मानें कि यह मेरी चीज है तो उसका फल तो तकलीफ है। फायदा कुछ नही है। इसी प्रकार ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मतत्त्व के अलावा जो कुछ भी है वह सब पर है। उससे मेरे आत्माका रच भी सम्बध नही है, उसे मानें कि यह मैं हूं, यह मेरा है, तो उसका तो फल कष्ट ही है।

(३०) परिश्रमका प्रतिकार विश्राम—देखो जब शरीरसे बहुत बडा श्रम कर डालते हैं तो उस थकानको मेटनेके लिए ढीले-ढाले शरीरसे लोटकर आराम पाते हैं और उस आराम के बाद फिर तगड़े हो जाते हैं, यह बात बोलते हैं ना। खूब काम करते-करते थक गए तो उसके बाद शरीरको ढीला करके लेट गए, शरीरको कडा करके कोई नही लेटता और कडा करके कोई लेटे तो थकान नही मिटती। सारा शरीर ढीला छोड़कर सीधा लेटे, करवटसे लेटे बल्कि ऐसे लेटें कि हाथ पैर हिल-डुल जायें, बिल्कुल ढीला ढाला शरीर करके आराम करते है तो फिर ६-६ घटे बाद तगड़े होकर अपना काम कर सकते है। तो शरीर जब थक जाय तो आराम लेते कि नही। ऐसी ही बात यहाँ देखें कि जब मन थक जाता है सोच-सोच कर, विकल्प कर-करके, मोह कर-करके, लड लडकर तो आपने उस थकानको मेटनेका कोई आराम समझा हो तो बताओ वह थकान कैसे मिटे ? शरीरकी थकान तो ढीले-ढाले पडकर आरामसे मिटती, लेकिन दिलमें जो थकान बन गई विकल्प करके, मोह करके, आकुलित होकर, शंकायें करके क्या होगा ? यह हो रहा कुछ-नुकसान, यह नुकसान पचासो विकल्प लगा लगाकर जो दिलकी थकान बन जाती है उस थकानको मिटानेका कोई उपाय सोचा क्या ? उस थकानको मिटानेका सच्चा उपाय है आत्मप्रकाश आत्मज्ञान। केवल दृष्टिमे आत्मस्वरूप ही रहे तो वह थकान मिट सकती है। परेशान शब्दका अर्थ क्या है ? पर और ईशान। ईशान कहते हैं मालिकको, और जहाँ परको मालिक बनाया अथवा जहाँ परका मालिक बना तो इसी भावको परेशान कहते हैं। अब खूब सोच लो। जो-जो लोग परेशानी का अनुभव कर रहे उनके चित्तमे यह बात बसी है कि मैं इनका मालिक हूं अथवा यह मेरा मालिक है। मैं इनका जिम्मेदार हूं। ऐसी कुछ भी बात सोचता है तो वह परेशान है और जैसा स्वतंत्र स्वरूप है अपना परका ऐसा स्वतंत्र स्वरूप माने तो वहाँ परेशानी किस बात

की ? एक उदाहरणसे इसे समझ लो—कोई सोचे कि मैं बहुत कमाने वाला हू तो उसका सोचना भ्रम है। उस धनको जिन जिनने भोगा, जिन जिनके भोगनेमे वह धन काम आया क्या उनके पुण्यका कुछ भी उदय नही है ? अरे उनके पुण्यका उदय आया तभी तो आपके द्वारा धनकी खूब कमाई हो रही है। आप उनका पालन-पोषण नही कर रहे, बल्कि आपको तो उनका नौकर बनना पड़ रहा है। आप उस पर अहंकार क्यो करते ? तो आप तो एक मशीनकी तरह है। जिन जिनके भोगनेमे वह धन काम आयगा उनके आरामके लिए आप मशीन है। मशीनको कही कमाते देखा ? क्योकि वह तो एक दूसरोके उपभोगके लिए चोज बन रही है। अहकार क्या करना ? जिसका जैसा भाग्य है उसे वैसा होगा।

(३१) निर्भ्रान्त होकर परिस्थितिके अनुकूल कर्तव्यके निभावका विवेक—आप इस समय गृहस्थीमें है तो आपकी जिम्मेदारी है वहां आप अपनी ड्यूटी बनायें इतना ही मात्र तो कार्य है, उसके फलके बारेमे ऐसा कुछ न विचारें और तृष्णाको बांधकर न रखे, सुगमतासे जो हो गया सो ठीक है। जिन जिनका जैसा भाग्य है उनको वैसी लक्ष्मी आयगी इसमे बधनकी क्या बात है ? जितना कष्ट है वह सब भ्रमका कष्ट है। भ्रम लगा रखा, कल्पनायें बना रखी, अपने आत्माकी सुध भूल रहे है। तो कुछ तो जीवनको मोड़ें, कुछ सम्यग्ज्ञानमे अपना समय लगावें, कुछ स्वाध्यायमे, कुछ चिन्तनमे अपने आपको जुटावें और कभी यह मत समझें कि हम पर कोई क्लेश आया। क्लेश तो दुनियामे है ही नही। मानते हैं तो क्लेश है और कोई शारीरिक क्लेश भी आ जाय कि जिसको मानना ही पड़ता हो तो इतना बल बनायें कि उसे समतासे सह सकें। आया है तो परवस्तु है, उसका ऐसा परिणमन है। मैं उसका कर क्या सकता हू। धैर्य बनावें। कभी अपनेमे विपत्तिका अनुभव न करें। जो स्थिति हो सो मंजूर। जैसे उदयाधीन काम हो सो स्वीकार है, मेरा क्या बिगड़ता है ? मेरा बिगाड़ है तो अपने स्वरूपको भूलनेमें, भ्रम करनेमे मेरा बिगाड़ है। उसका कही इलाज नहीं है। किसीको भ्रमका रोग हो और इलाज करे कोई दूसरा तो क्या उससे उस का भ्रम मिट जायगा ? नही मिट सकता। अरे जिस विधिसे भ्रम मिटता है वह इलाज किया जायगा तो भ्रम मिट सकता है, किसी दूसरे उपायसे भ्रमका रोग दूर नही सकता।

(३२) उदाहरणपूर्वक परविविक्तताका दिग्दर्शन—जैसे एक शख होता है, जिसे लोग बजाते हैं, तो उस शखके अदर एक कीडा होता है उसका उस ऊपर वाले खोलसे एक बाल बराबर सम्बंध रहता है। वह कीडा उस ऊपर वाले खोलसे अपना मुख बाहर निकाल लेता है। उसका सारा ढांचा बाहर आ जाता है, पर उसका कुछ न कुछ सम्बध बना रहता है। वह कीडा मिट्टी वगैरह जो कुछ खाता है उसीसे वह भी पुष्ट होता रहता है और उसके

ऊपरका पोल भी पुष्ट होता रहता है। देखिये कैसी विचित्रता है कि हम आपका शरीर तो हड्डियोके ऊपर लदा है, पर उस कीडेके शरीरके ऊपर हड्डियो जैसा कड़ा खोल लदा रहता है। तो देखिये वह शंख भूरी, मुल्तानी आदि अनेक प्रकारकी मिट्टी खाता है फिर भी उसके ऊपरका वह खोल उन मिट्टियोरूप नही बन जाता। वह सफेद शंख जब कभी काला बनना होता है तो क्या उसे कोई रोक सकता है ? नही, बिल्कुल भिन्न बात है। तो ऐसी हीं इस आत्मा और शरीरकी बात है। इस आत्माकी अन्य चोजोंकी भी बात है। मैं कुछ सोचूं तो उसके मुताबिक हो जाता है क्या बाहरमे ? मैं विकल्प करूं तो उसका बधन और हो जाता है। बाहरमे मेरे सोचनेसे बनता कुछ नही, विकल्प करे तो बन्धन और बन जाता है। दिन भर काम करते, मनका भी काम करते, वचनका भी काम करते, शरीरका भी काम करते, उस सब थकानको मेटनेका एक घंटा समय तो रखना ही चाहिए। वह थकान मिटेगी ज न प्रकाशमे। स्वाध्याय करें, तत्त्वचर्चा करें, तत्वचिन्तन करें। मरणसमय सभीका आ ही रहा है। तो इन क्षणोको अमूल्य समझें। प्रमादमे न गवायें, गप्पोमे न गवाये, उसका सदुपयोग बनाये। कोई ग्रन्थ ले लें, उसे बांचने लगें। कोई कठिन न लगेगा। सब सरल बात हो जायगी। तो इन सब कष्टोको, थकानोको दूर करनेके लिए हमे सम्यग्ज्ञानका उपाय बनाना चाहिए। इन उपायोके बनाये बिना हम कभी भी सकट मुक्त हो नही सकते।

(३३) परभावविविक्त निज एकत्वधाममे परमविश्रामका सुयोग—मैं ज्ञानमात्र हू, ऐसा अनुभव करनेके लिए विविक्तता रूपसे परिचय करना चाहिए। यह जीव परमार्थत अनादिकालसे समस्त परसे विविक्त है। यह परिवार है सो मैं हू, यह देह है सो मै हूँ, जो भीतरमे विचार उठते है सो मै हू, जो मै कर रहा हू सो सही कर रहा हू, ऐसा ही करनेका मेरा काम है, इस तरह परतत्त्वोमें यह लिपटा लिपटा चला आया है। तो परतत्त्वोसे हटनेकी विधिका भी प्रयोग करना चाहिये। और वह पद्धति मानो इस प्रकार है कि जैसे कोई पुरुष विलायतमे गया, वह जब स्वदेश आना चाहता है, मानो आपके शोलापुर ही वह आना चाहता है। वह जब वहांसे टिकट कटाकर चलता है तो कुली लोग अथवा मजदूर लोग अथवा कोई मित्र जन उससे पूछते हैं कि भाई आप कहा जायेंगे ? तो वह कहता है कि हम इडिया (भारत) जायेगे। जब वह वहांसे चलकर भारतके किसी हवाई अड्डे अथवा बन्दरगाह पर आता है, वहां कोई पूछता है कि आप कहां जायेगे ? तो वह कहता है। कि हम महाराष्ट्र जायेंगे। जब महाराष्ट्रके किनारे वह पहुचता है तो वहां कोई पूछता कि आप कहां जायेंगे ? तो वह उत्तर देता कि हम शोलापुर जायेंगे। जब शोलापुर स्टेशनपर आ गया तो वहां किसी रिक्शे वालेने पूछा आप कहां जायेंगे ? तो वह उत्तर देता कि हम फलाने मोहल्ले

मे जायेंगे। फिर उस मौहल्लेमें वह जाकर कहता कि हम तो इतने नम्बरके मकानमे जायेंगे। जब उस मकानमे वह पहुचता है तो अपने विश्रामके कमरेमें पहुच कर बडे चैनसे विश्राम करता है। तो ऐसे ही हम आपका यह उपयोग अपने निज विश्रामधामसे हटकर बहुत बाहर पहुंच गया है। वहाँ उसे कही शान्ति तो मिलती नही किन्तु सुख मौज ऐश आराम विभव ये सब चीजें मिली, इनमे मस्त रहा इसमे भी शान्ति न पाई अब सुध आयी कि चलो अपने देश चलना है, अपने निज धाममे चलना है। तो जब बहुत दूर तक यह पहुंचा हुआ था। यहाँ तक कि जीवने प्रकट भिन्न पदार्थोमें भी आत्मीयता अगीकार कर डाला था, यह घर है सो मैं हू। घरकी एक ईंट भी खिसक जाय, टूट जाय, बीचमे से निकल जाय तो ऐसा अनुभव किया कि मानो दिलमे से ही कुछ निकल गया। इतना अजीव पदार्थोंके साथ लपेट बनाया। अब जब बाह्य भौतिकसे हंटता है तो मानो कोई पूछे यहांसे हटकर कहाँ जा रहे? उत्तर—बाह्य जीव तत्त्वके प्रसगमे, जीव तत्त्वसे सम्बध बनानेके लिये। अजीव पदार्थोसे नही, भिन्न क्षेत्रोमे रहने वाले पदार्थोसे नही। वहाँसे हटकर आये जीव पदार्थपर, तो परिवारमे अटका, यहाँसे हटकर कहाँ जावें? इन भिन्न क्षेत्र वाले परजीवोंसे हटकर कहाँ जा रहे हो? हम अपने एक क्षेत्रावगाही पदार्थोंमे जा रहे है। इसमे यह देह तक आया, देहमे अटका। यहाँसे भी हटकर जायगा, कहाँ जायगा? इन प्रकट दृश्यमान एक क्षेत्रावगाही परतत्त्वोंसे हटकर आया एक कर्म देशमें कार्माण वर्गणामे, उसके फलको, उसके प्रभावको इसने अंगीकार किया था, कर्मक्षेत्रसे भी हटकर आता है तो उस योगकी विपरिणतिपर मानो आया। भावोपर, क्रोध, मान, माया लोभमे मानो आया, यहाँसे भी हटकर आता है विचार-तरंगो तक। विकारमे और इस विचार में इतना अन्तर है कि विकारमे तो गुणकी अनुरूपता रच भी नही है और विचारसे कुछ गुण की अनुरूपता है, और ऐसा होनेका कारण यह है कि विकार तो होता है कर्मोदयसे और विचार होता है उदय एवं क्षयोपशमसे। ज्ञानावरणका क्षयोपशम पाया, इतने विचार बनने लगे, लेकिन वे विचार भी अनात्मतत्त्व हैं, वहाँसे हटकर पहुचा तो अन्तर्जल्पमे, वहांसे भी हटकर पहुचा तो कहा? निश्चयके विषयभूत अखण्ड तत्त्वकी पात्रता दिलाने वाले विचारपर, और वहासे हटकर अपने निज धाम चैतन्यस्वभाव उसमे यह उपयोग पहुचा है, वहां विश्राम लेता है। तो कितना दूर-दूर यह उपयोग हटा था और कितनी मूढतायें कर रहा था, दुःखी हो रहा था, यह बात समझमे आती है। जब हम विविक्तताके क्षेत्रका अध्ययन करते हैं—इससे भी निराला, इससे भी निराला।

(३४) मोह अपराधका भयंकर परिणाम—अब तक जो कष्ट उठाया वह सब अपनी मूढताके कारण उठाया। मूढना कहो या मोह कहो, एक ही अर्थ है, पर लोग मोह

को तो गाली नही समझते और मूढता शब्दको गाली समझते हैं। अन्तर है क्या ? मुह् धातुसे मोह बनता, मुह् धातुसे मूढता बनता। शायद यह अन्तर मान रखा हो कि मोहकी तो मुह् धातुसे सीधी भाववाचक निष्पत्ति हुई और मूढता शब्दमे मुंह धातुसे संज्ञा बनाया, फिर भाववाचक प्रत्यय लगा है, पर यह जीव इतना कहाँ समझदार है और इसमे अन्तर ही क्या है ? मूढ़ताकी, बेवकूफी की। तो जो बेवकूफी करे, मूढता करे उसको दण्ड मिलना प्राकृतिक बात है। बेवकूफ होकर फजीहत ढूंढनेकी, विपत्ति ढूढनेकी आवश्यकता नही रहती बेवकूफके सिर पर विपत्ति लहराती ही रहती है। यह बेवकूफी है परतत्त्वोमे आत्मीयताका अंगीकार करना, यह मैं हू। सुननेमे अथवा कुछ चर्चामे एक आश्चर्य सा होता है कि यदि किसी जीवने इतनी बात मान ली कि देह मैं हूं तो यह कोई बडा गुनाह तो नही है। किसी आदमीको पीटा नही, किसीकी चोरी नही की, किसीको सताया नही, अकेला बैठा है, देह को मैं मान रहा है, इसमें कौनसा अत्याचार किया, गुनाह किया, जिसका कि इतना बडा दण्ड दिया जा रहा है कि पशु बने, कीड़ा-मकोडा बने, पेड-पौधा बने, ऐसा कौनसा बडा गुनाह हो गया ? केवल देहमे आत्मबुद्धि कर ली। ऐसा मनमे प्रश्न हो सकता है। किन्तु वस्तुस्वरूपकी ओरसे देखो तो यह सबसे बडा गुनाह है, परको आपा मान लेना यह ही समस्त पापोकी जड़ है और साक्षात् भी यह अन्याय है कि तुम परकी सत्ता ही नही रहने देते अपनी कल्पनामे यह देह यह स्कध भी सत् है, इतना भी मानना इसको बरदास्त नही हो रहा और इतना पापबुद्धिमे आ गए कि इन अनन्तानन्त परमाणुओकी सत्ता मिटाने पर उतारू हो गए। यह कम गुनाह है क्या ? अनन्तानन्त आहार वर्गणाओकी सत्ता मिटा देना विकल्पमे, यह तो महापाप हुआ। इस देहको माना कि मैं हू। इसका अर्थ है कि देह नही है इसकी सत्ता ही नही है। यह तो मै हू, तो परपदार्थके सत्त्वका घात करना, सारे विश्व की हिंसा करना अर्थात् जगतमे जितने पदार्थ है सब पदार्थोकी सत्ताका लोप कर देना यह कितना बडा भारी अपराध कहला सकता है ? जिसने वस्तुकी स्वतन्त्रता स्वीकार नही की, प्रत्येक पदार्थ स्वयं सत् है, एकका दूसरेमे अत्यन्ताभाव है, एक दूसरे रूप न कभी हो सका न कभी हो सकेगा। यों समस्त पदार्थ स्वतंत्र सत्ता रखते है, इस तथ्यको न मानकर और सब रूप अपने को कर डाले तो इसको तो महान क्रोध कहो कि सबका विनाश कर दिया। कर नही सकता विनाश, पर कल्पनामे तो सबको मिटा दिया और इतना गर्वमे आया यह कि अन्य कुछ चीज नही। मानो इसका अस्तित्व ही नहीं, सब मै हू। तीव्र जो कषाय रखे और उससे भी तीव्र पाप है अज्ञान तो इतना दण्ड पायगा ही।

(३५) मोह राग द्वेषके अनर्थका उदाहरण—मोह रागद्वेषके अनर्थकी एक घटना

दृष्टान्तमे दी गई है कि जंगलमे हाथियोके पकडनेकी विधि क्या है कि एक बहुत बडा गड्ढा खोदा उस गड्ढेपर बांसकी पतली पतली पर्चें बिछा दी, उसपर जमीन जैसे रगका कागज बिछा दिया, उसके ऊपर कुछ हथिनी जैसे रूप ढांचेमे झूठी हथिनी बना दी और करीब ५० हाथ दूरपर एक ऐसा झूठा हाथी बनाया कि जो मानो इस हथिनीको ओर दौडता हुआ सा दीखे। बस इतना दृश्य बनाना है शिकारीको और अपने घर आरामसे बैठता है। जगलका हाथी झूठी हथिनीको देखकर उस गड्ढेपर आता है और आनेकी जल्दी भी मचाता है, क्योकि वह देख रहा है कि दूसरा हाथी आ रहा है। मै पहिले पहुचू । वह गड्ढेपर आता है, बांस टूट जाते हैं और वह गड्ढेमे गिर जाता है। कई दिन तक उस हाथीको भूखा रखते है, फिर रास्ता बनाकर उस कमजोर हाथीको निकाल लेते हैं और अकुशसे वशमे रखते है। तो उस हाथीने विपत्ति पायी उसका मूल कारण है रागद्वेष मोह। उस हाथीको अज्ञान था जिससे वह यह न हिचान सका कि यह झूठी हथिनी है, राग था उस हथिनीसे और द्वेष था उस हाथी से कि यह हाथी उसका विषय न बिगाडे। यो मोह राग द्वेषसे आक्रान्त होकर हाथी गड्ढेमे गिर पडा। ऐसे ही संसारके जीव जितना भी विपत्तिमें पडे है उसका कारण है मोह राग द्वेष अज्ञान। यह विषय सुख भयानक है, मायाजाल है, आत्माके हितके हेतुभूत नही है। अकल्याणमय है। परपदार्थ, इनके अनुभवनेकी मुझमे सामर्थ्य नही है। सही ज्ञान नही है, अज्ञान बसा है. विषयोके प्रति राग लगा है और उन विषयोमे जो बाधा डालने वाले है उनसे द्वेष लगा है। विषयोमे बाधा डालने वाले दो तरहके माने गए है—एक तो वह जो इस विषयको चाहता हो जिस विषयको यह चाहता है, दूसरा वह जो इन विषयोको भग करनेमे विघ्न करता हो। तो मोह रागद्वेष इन तीनोके वश होकर प्राणी दुःखी हो रहा है।

(३६) **विविक्त एकत्वधामके परिचयका प्रसाद**—इस संसारी जीवको अपने विविक्तपनेका परिचय हो जाय कि यह विषय प्रकट भिन्न पदार्थ है। रूप, रस, गंध, स्पर्शमय पुद्गल है, अचेतन है, जड है, इसे मैं न करता हू, न भोगता हू, इससे निराला हू और जिन इन्द्रियोके द्वारा इन विषयोको अनुभवते है ये द्रव्येन्द्रिय भी सब पुद्गल हैं। मै तो इनसे निराला ज्ञानस्वरूप हूं। जिन विषयोको हम भोगते हैं ये विषय आफत हैं, जिस विचारके द्वारा हम भोगते हैं ये ज्ञानके खण्ड-खण्ड है। यह मै अपने ज्ञानस्वभावके खण्ड-खण्ड बनाकर अपना ही विनाश कर रहा हू। मेरा स्वरूप तो अखण्ड है, सर्वज्ञता स्वरूप है जो विविक्तता का परिचय करता है, वह विषयभोगोसे विमुख हो जाता है, विचारोसे विमुख हो जाता है और अपने विशुद्ध ज्ञानस्वभावमे उपयुक्त हो जाता है। यो पूरसे विविक्त मात्र निज स्वभाव मे तन्मय आत्मतत्त्वको अगीकार करना कि मै यह हू ज्ञानमात्र। जो काम अन्य उपायसे

सफल नही हो सकते वे सारे काम इस परम उपेक्षा भावसे सिद्ध हो जाते हैं और सिद्धि वहाँ कहलाती है जहाँ इच्छा नही रहती । ज्ञानको कल्पवृक्ष कहा है । यह आत्मा कल्पवृक्ष है । जो चाहे सो इससे प्राप्त कर लो । विकार चाहे तो विकार प्राप्त कर लें, अविकार दशा चाहें तो अविकार दशा पा ले । अब उनके व्यामोह है जो इन कल्पवृक्षोसे खलके टुकडोकी भांति विकार स्थितिको ही चाहते हैं । अद्भुत आनन्द, परम आनन्द अपने अविकार ज्ञानस्वरूपके अनुभवमे है । मनुष्यगतिमें मानकषाय प्रबल होती है । भले ही दुनियाके लोगोको ऐसा दिखता है कि मनुष्योमें लोभ कषाय बहुत चल रहो है, लोभकी प्रबलता देवोमे है, मनुष्योमें मानकी प्रबलता है । जो कुछ ये मनुष्य करते है वह मानके लिए करते हैं । धन क्यों कमाते हैं ? इसलिए कि मै दुनियामे सबसे अच्छा धनी कहलाऊ । केवल इस भावनाकी पूर्तिके लिए ही अथक परिश्रम करते है । घर बसाते, जो भी उद्यम करते, एक अपनी मान पुष्टिके लिए करते हैं । तो यह मान धूलमे मिल जाय, इसको चूर कर दिया जाय ज्ञानबलसे, प्रयोगबलसे, उस प्रकारके आचरणसे तो यह भी एक इतनी बड़ी सफलता हो गई कि जिस स्थितिमे रहकर हम समरसपूर्ण इस अतस्तत्त्वका अनुभव कर सकें ।

(३७) ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वको समझनेके लिये अकिञ्चनत्वका प्रतिबोध—अपनेको समझना है कि मै ज्ञानमात्र हूं, एतदर्थ पहिले समझ लीजिए कि मैं अकिञ्चन हू । किञ्चन किसे कहते है ? कुछ, कुछ किसे कहते ? जो पुष्ट नही, जो सारभूत नही उसका नाम है कुछ । कुछ पाया, कुछ देखा, जहाँ तृप्ति नही होती, जहां पूर्णता नही आती, जहा समृद्धिका अनुभव नही होता उसके संगको कहते हैं कुछ । मैं कुछ नही हू । मैं गडबड तत्त्व नही हूं । मैं तो अपने आपमे अपने ही ऐश्वर्यसे सम्पन्न हू । ज्ञानसिवाय मेरेमे और कुछ नही है । किसी भी अन्यका प्रवेश नही है । जो कुछको चाहता है, जो कुछके साथ लगाव रखता है उसे वह कुछ भी नही मिलता और उल्टी ऐसी चीज प्राप्त होती है कि जिससे उसे घृणा हो जाती है । कुछके लगावमें विडम्बना बनती है । कुछ भी नही मिलता और विडम्बना बन जाती है । यह सब कुछ ही तो है, दृश्यमान सग परिग्रह वैभव यह कुछ ही तो कहलाता है । इसका कोई राग करे, मोह करे तो इसपर तो अधिकार कुछ है नही कि इसको हम अपने साथ ही रख सके, और इतनी विडम्बना बन जाती है । दुर्गतियोमे परिभ्रमण होता है । तो मैं कुछ नही हूँ, अकिञ्चन हू । कुछकी चाह न करें । एक सेठकी हजामत बनायी नाईने । तो जब वह नाई छुरा लावे गलेके पास, यहाँ भी तो बाल है । तो उसे यह शंका हो गई कि यह छुरा गले तक ले आता है, इसके हाथमे ही तो मेरी जान है । अगर इसने जरा भी छुरा फेर दिया तो मेरी जान गई । हालांकि नाईपर कोई ऐसा सन्देह नही करता । नाईके ऊपर

तो लोगोको इतना विश्वास रहता है जितना कि गुरुवोंपर भी नही रहता। नाईको तो लोग अपना गला बडे विश्वासके साथ सौप देते है। कोई भी उनपर अविश्वास नहीं करता। परन्तु उस सेठको नाईपर यह सदेह हो गया कि कही यह मार न दे। तो वह कहने लगा—खवास जी, बडी अच्छी तरह हमारी हजामत बनाना, तुमको हम कुछ इनाम देंगे। उसने अच्छी तरह हजामत बना दी। अब इनाम देनेका समय आया तो उसने अठन्नी दी। एक आनेमे तो हजामत बनती थी, पर उसे ८ आने दिए, तो नाई कहने लगा—मैं यह अठन्नी न लूंगा; मैं तो कुछ लूंगा। रुपया देने लगा तो उसे भी लेनेसे इन्कार कर दिया, अशर्फी देने लगा तो उसे भी मना कर दिया और इस हठमें आ गया कि मैं तो कुछ ही लूंगा। सेठ परेशान हो गया, उसे क्या दे दे? उसे प्यास लगी तो एक आलेमे दूधका गिलास रखा था। सेठ बोला—नाई जी जरा वह गिलास उठा देना, ज्यों ही उठाया और उसे देखा तो उस दूधमे कोई चीज पडी हुई थी, समझमे न आ रही थी तो वह झट बोल उठा—अरे सेठ जी इसमे तो कुछ पड़ा है।···क्या कुछ पडा है?···हा कुछ पडा है?····तो तू उसे उठा ले, क्योकि तू कुछ ही तो चाहता था। लो उस नाईको कुछ की हठमें क्या मिला?····कोयला। तो ऐसे ही इन समस्त संसारी जीवोको कुछ की हठमे क्या मिलता है?····पाप, विडम्बना, पश्चात्ताप, क्लेश। इस जगतका कोई भी पदार्थ हठके योग्य नही है। सब पदार्थोंको कहो कि तुम अपनी सत्तामे रहो, तुम्हारे हाथ दूरसे ही जोड़ रहे। तुम अपनी सत्ताका अनुभव करो, तुम भी ठीक रहो, हम भी ठीक रहे।

(३८) समस्त अनात्मतत्त्वोंसे विविक्त ज्ञानमात्र निजस्वरूपके अनुभवकी संगीति—यह जीव जब समस्त अनात्मतत्त्वोसे विविक्त अपने स्वरूपपर आता है तो यहां उसे यह अनुभव होता है कि मैं ज्ञानमात्र हूं। तो कुछ अन्तर्दृष्टि करके भीतर निहारने चले, इन्द्रियका व्यापार बन्द करके भीतर परखने चले तो वहाँ न रूप मिलेगा, न रस है, न गंध है, न स्पर्श है, न कोई टुकडा है। वह तो एक अमूर्त पदार्थ है। मगर सुसम्वेदन गम्य बात यह है कि वह ज्ञानस्वरूप है। ससारके समस्त द्रव्योसे विलक्षण वस्तु है। जगतके समस्त पदार्थों का सम्राट है यह पदार्थ। यह न हो तो और की सत्ताका भी क्या मतलब? सत्ताका भी कैसे प्रकाश हो कि और भी चीज है अथवा यह बन ही नही सकता यदि यह आत्मतत्त्व न हो। कोई कहे कि जगतमे केवल ५ पदार्थ मान लो। आफत न मचाओ जीव मानकर। केवल पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये ही ५ मान लो, जीव नामक कुछ नही है। ५ हैं और जीव ही न हो केवल तो पहले यह बताओ कि इस पुद्गलका यह रूप आयगा कैसे? यह चौकी कैसे बनी जिसपर आप पुस्तक रखे हैं। अगर जीव न हो तो यह चौकी

बनेगी कैसे ? ये दृश्यमान कोई पिण्ड बनेंगे कैसे ? ये पत्थर मिट्टी, कंकड, धूल वगैरह हैं और कहो कि ये भी कुछ नही हैं तो पुद्गल ही कुछ न रहा। यह बनी ही इस प्रकार कि जीवका सम्बन्ध हुआ और ये आहार वर्गणायें इस रूपमे स्पष्ट हुई, चीज बन गई, नष्ट हुई तो सत्ता जानी, न हो तो पुद्गलका यह रूप कैसे बने ? फिर काल द्रव्य कैसे परिणमाये ? धर्म अधर्मकी बात ही क्या ? एक जीव तत्त्वके न रहनेपर या न मानने पर सभीका अस्तित्व अप्रतिभात व अप्रयोजन रहा। तो जीव है, जीवमे भी सारभूत क्या है ? जीवत्व। अन्य सब कुछ न रहे मात्र ज्ञायकत्व हो इसे कहते है समयसार। समय मायने समस्त द्रव्य। उनमें जो सारभूत हो उसे कहते है समयसार। कौन ? जीव पदार्थ। अब जीव पदार्थमे भी जो सारभूत हो उसे कहते हैं समयसार। जो भी पहिचानमे आये ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द शक्ति, फिर उनमें भी जो सार लगे वह कहा जायगा समयसार। सार सार, ज्यो ज्यों अन्दरमे घुसते जायें त्यो त्यो सार-सार मालूम होगा। अनेक समान हो तो सबका लोप हो जाता है एक शेष रहता है। व्याकरणमें भी जब किसी शब्दको बहुवचनमे रूप रख देते हैं तो उससे पहले प्रकृति अनेक थी। बहुवचनका प्रत्यय लगनेपर एक एक प्रकृति रहती है। शेषका लोप हो जाता है। तो यह समयसार जो अन्तमे सारभूत दीखा, जिसके आगे कल्पना नही चलती, जो कल्पनासे भी परे है वह है ज्ञानमात्र एकत्वमय आत्मस्वरूप। उसका अनुभव होना। मैं ज्ञानमात्र हूँ मेरे स्वरूपमे अन्यका प्रवेश नही याने ज्ञानके सिवाय जो कुछ है उस सबका प्रवेश नही मेरे स्वरूपमे, ऐसा जब मैं देखता हू, जो दिखता है वह निर्भार है। उसपर किसी भी प्रकारका बोझ नही है। मार्ग तो दिख गया। अब चले बिना उस स्थानपर पहुंच नही सकते। तो चलनेका उद्यम करना है। मै ज्ञानमात्र हू ऐसा बराबर सोचना, मनन करना और ऐसा ही उपयोग बनाना कि जिसमे अन्य सब विस्मृत हो जाय और मात्र यह ज्ञानमात्र तत्त्व ही उपयोगमे रहे, ऐसे अनुभवमे इस जीवपर किसी भी प्रकारका भार नही रहता।

(३९) ज्ञान मात्र अन्तस्तत्वकी आराधनाके प्रसादसे अनन्त आत्मावोंको सिद्धिका लाभ—जो भी आत्मा अनन्त सुखी हुये है वे सब केवल इस ज्ञानमात्र अन्तस्तत्वकी दृढ़ आराधनाके प्रसादसे हुए हैं। मै ज्ञानमात्र हू ऐसी अपने आपके स्वरूपकी दृढ़ प्रतीति दृढ मग्नताके लिए इस अनादिसे विकारमे पगे आये हुए पुरुषको जो कठिनाइयाँ होती हैं उन कठिनाइयोके वातावरणको दूर करनेका नाम है श्रावकधर्म और मुनिधर्म। चाहे श्रावक हो चाहे मुनि हो, कोई ज्ञानी हो, उद्देश्य एक ही है ज्ञानमात्र अंतस्तत्वमे उपयोगको स्थिर बनाना। लेकिन कठिनाई आती है सस्कारवश इन्द्रियविषयोके संगमे जो विकारको हम

व्यक्त कर रहे थे उनका समागम एक कठिनाई है उसको दूर किया श्रावकोने थोड़ा और पूर्ण रूपसे दूर किया मुनियोंने । अब जैसे कोई निरंतराय वातावरण पाकर अपने संयमको कुशलतासे निभाता है ऐसे ही गुणी जनोने एक निरतराय वातावरण पाया तो काम उनका एक ही रह गया । ज्ञानमात्र अतस्तत्त्वकी आराधना करना, इसके प्रसादसे कितने आत्मा पवित्र हुए ? अनन्त आत्मा । निगोद जीवको छोडकर जितने ससारी जीव है असंख्याते पृथ्वीकाय, असंख्याते जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, प्रत्येक वनस्पतिकाय; दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चारइन्द्रिय नारकी, मनुष्य, देव; पञ्चेन्द्रिय तिर्यँच ये सब जितने संसारी जीव हैं, इन सबकी जितनी गणना है उनसे अनन्त गुने हैं सिद्धभगवान । सिद्ध भगवन्तोसे अनन्त गुनी सख्या निगोद जीवोकी है । तो निगोदके बाद द्वितीय संख्याका नम्बर है तो सिद्धका । इतने सिद्ध भगवंत जो पवित्र हुए है वे हुए है इस ज्ञानमात्र अंतस्तत्वकी आराधनासे । दृष्टि बराबर अपनेमे ऐसी मनन करनेकी बनाये कि मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञान ज्ञान ही मैं हूं । ज्ञानसिवाय मेरेमें कुछ नहीं, ऐसा यह ज्ञानमात्र है, इसका कुछ है कहाँ ? इसका कुटुम्ब ? बिल्कुल स्ववचनवाधित है । इस ज्ञानमात्र अतस्तत्त्वका कुछ प्रसंग संग कहाँ है, क्या है कौन है बाहरका ? केवल यह मै ज्ञान ज्ञानमात्र हू, ऐसी आराधना बनाओ ।

(४०) शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी धुन बिना बड़े-बड़े पुण्यशालियोकी भी निरापदताका अभाव—बड़े-बडे पुण्यशाली जीव जिनके बहुत-बहुत पुण्य माना गया वे भी तब तक कष्टमें रहे जब तक ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वकी उपासनामे मग्न नही हुए । श्रीराम भगवान जिनका चरित्र पद्मपुराणमे बहुत वर्णित है पुण्यवान माने गए । नारायणने बलभद्रकी सेवा की हो उसका यह मुख्य उदाहरण है । और जिन्दगी कैसे बीती ? उनका बचपन दुःखमें बीता, कुछ बड़े हुए तो उस समयकी घटनायें देखो, घर आये, राज्यके योग्य हुए, सबसे बडे ही तो पुत्र थे दशरथके, जब राज्यपद देने लगे उस समयकी बाधायें देखिये । कैकेई रानीने जब यह देखा कि दशरथ विरक्त हो रहे है, भरत भी विरक्त हो रहा है । पतिसे भी गए, पुत्रसे भी गए । तो यह दशरथ तो माननेके नही । तब एक जो वर पहले दिया था (रथकुशलताके उपलक्षमें मिला था) उसका वर आपके धरोहर है सो दीजिए ?···हाँ लो । क्या चाहती हो कैकेई ? ····बस यही चाहती हूं कि भरतको राज्य दे । रामसे बिगाड न था । कैकेईको विवश होकर कहना पडा था, और कोई उपाय न सूझा था कि भरतको वह विरक्त होनेसे रोक सके । और श्रीरामको राज्यपद मिलते-मिलते हुआ क्या ? भरतको राज्य दिया गया । लोग कहते है कि सज्जनता उत्तम चीज है, मगर सज्जनताका फल भी कष्ट है अथवा यो कहो कि कष्ट बिना सज्जनता भी नही आती । श्रीरामने सोचा कि मेरे रहते हुए भरतका प्रताप कैसे बढ़ेगा ?

लोग तो मुझको ही चाहते हैं, आदर रखते हैं। जब तक अयोध्यामें रहूंगा तब तक भरतका प्रताप न बढेगा, यह सोचकर श्रीराम जंगल चले गए। देखिये—बुराई किसीमें न थी, मगर विपत्ति सभीने पायी। भरत बड़े भाईके इतने भक्त कि यही मानकर राज्य किया कि राज्य तो श्रीरामका ही है, चरणचिन्ह धर दिये कि यह है राज्य करने वाला। अच्छा, तो बनवास मे कोई आराम मिला करता है क्या? स्प्रिंगदार पलंग हो, ये बिजलीके पखे हो, अच्छे महल हो, ये कुछ साधन रहते है क्या? वहाँ भी दुःख भोगा। भले ही पुण्योदय था, देवोने सहाय किया, पर मौजकी बात तो किसी-किसी दिन थी, सारे दिन तो कष्टके ही थे। रहे आये रहे आये, एक दिन ऐसा हुआ कि सीताको रावण हर ले गया। उसके पीछे श्रीरामको इतना वियोग कष्ट हुआ कि उनकी बुद्धि उद्विग्न हो गई, वे अधीर हो गए, जगह-जगह सीताका पता लगाते फिरे, आखिर युद्ध हुआ। यह एक उनकी विपत्तिकी बात कह रहे। भले ही उनके पुण्यका बहुत उदय था, परन्तु एक लौकिक निगाहसे देखो तो उनका सारा जीवन दुःख ही दुःखमे गया। सीताको रावणसे छुडाकर वापिस लाये, युद्धमे जीते, फिर एक साधारण धोबी की स्त्रीने कुछ बक दिया—लो सीताको आफत आयी। श्रीरामने अपनी मर्यादाको कायम रखनेके लिए सीताको जगलमे छुडवा दिया। अरे वह धोबिन तुरन्त ही कह देती तो भी गनीमत थी, पर सालो बादकी घटना थी कि धोबिनने कुछ बक दिया तो वहाँ श्रीरामने सीताको जगलमे छुडवाया। सीताने जगलमे दुःख सहे, श्रीरामने वहाँ दुःख सहा। यह वियोग बहुत दिनो तक हुआ। बादमे सीताके पुत्र लव और कुशसे श्रीरामका युद्ध हुआ। युद्धके बाद जब बात मालूम हुई तो सीताको फिर घर लाये। तो श्रीरामके चित्तमे मर्यादा रखनेकी फिर कल्पना उठी। सीताको परीक्षा देनेका हुक्म किया। सीताने स्वयं ही पूछा कि तुम क्या परीक्षा लेना चाहते हो? विषपान करू या अग्निमे कूदूं या और कुछ बात हो? तो श्रीरामने सोचा कि विषपान किए जानेपर तो लोगोको विश्वास नही हो सकता, वे सोचेंगे कि विषकी जगहपर शायद शरबत ही पिला दिया गया होगा। यह सोचकर श्रीरामने अग्निमे कूदनेका आदेश दिया। श्रीरामके चित्तमे वहाँपर भी अनेक प्रकारके विकल्प रहे, पर अन्तमें अग्नि-परीक्षा हुई और परीक्षामे सीताको उत्तीर्णता मिली। अग्निपरीक्षा हो चुकनेके बाद श्रीरामके मनमे आया कि अब सीता आरामसे घरमे रहे, पर सीताके मनमे इस प्रकारका कुछ विचार कैसे हो सकता था। वह आर्यिका हो गई। खैर यहाँ और दूसरी घटना देखिये—राम लक्ष्मण का प्रेम सम्वाद सुनकर देवोने परीक्षा की। श्रीराम मर गए ऐसा वातावरण देवोने बना दिया, बडा रुदन भी सुनाया, जिसे सुनकर लक्ष्मणने जाना कि राम मर गए। वहाँ उस दृश्यको देखकर लक्ष्मणके प्राण समाप्त हो गए। लक्ष्मणके मरनेके बाद श्रीरामने ५-६ माह तक क्या

प्रवृत्ति की ? लोगोको यह ख्याल हो गया कि श्रीराम कही पागल तो नही हो गए। देवोने कई बार घटनायें दिखायी। पत्थरोंपर कमल उगाये गए, सूखे हुए पेडको सीचनेके दृश्य दिखाये गए, मरे हुए बैलोको गाडीमे जोतनेका प्रयास दिखाया गया, अनेक घटनायें देखकर श्रीरामको सही ज्ञान जागृत हुआ, ज्ञानाराधनामे लगे और मुक्त हुए। जब तक ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वकी सुधमे दृढ़ नही हुए तब तक सकटोंसे मुक्त न हुए। यह तो श्रीरामकी बात कही। एककी ही बात नही; सबकी यही बात है।

(४१) **मोह और क्षोभसे पूर्ण विषैले जीवनकी व्यर्थता**—हम आपकी तो स्पष्ट बात है। रात दिनके चौबीसो घटे करते ही क्या है ? सब विडम्बना, सब मूढता, बेकारकी बातें। रागद्वेष मोह विरोध, यहाँ वहांकी बातें, जिनसे कुछ सम्बंध ही नही। कितनी बिडम्बना हम रात दिन किया करते हैं। जो कल सुबह किया सो आज किया, सो ही पचासो वर्षोंसे करते आ रहे, जो दोपहरको किया सो अब किया। ५ इन्द्रिय और मनका विषय इनको ही रोज रोज भोगते रहते है, रोज खाया, रोज छोडा। तीनो लोकमे ऐसा कौनसा पुद्गल है ग्राह्य जिसे जीवने अनेक बार ग्रहण न किया हो। अनेक बार ग्रहण किया अनेक बार छोडा तो ग्रहण करके छोडे हुएको तो जूठा कहा करते हैं। हम आप रोज रोज क्या करते है ? वही भोजन रोज खाते। रोजके इन्द्रियविषय वही रोज सेवन करते। भ्रम बना लिया है कि ये जो मेरे लडके हैं सो मेरे हैं और बाकी दुनियाके जो जीव है सो गैर है। फल क्या होता है ? इसे कहते हैं कूपमण्डूक। उसी सीमामे हमारे विचार डोलते रहते हैं और उससे ममता पुष्ट होती रहती है। अरे राग करो तो खूब करो, पर एक बात तो मान लो कि राग करो तो सबपर करो। सारे अनन्त जीवोको छोडकर दो चार जीवोपर राग करनेका परिणाम बहुत भयंकर है। सब परमात्म स्वरूप नही हैं क्या, सब जीवोमे उस स्वभावको देखो, श्रद्धा सही रखो, कर्तव्यका प्रोग्राम सही रखो, और यह तो परिस्थिति है कि जो एक ऐसा हो गया है कि भाई हम इस घरके ६-७ जीवोकी सम्हाल करें, तुम इस घरके ६-७ जीवोकी सम्हाल करो, यह इस घरके ६-७ जीवोकी सहाल करें। यह बटवारा हो गया। लो सब मनुष्योकी अच्छी व्यवस्था हो गई। यह तो एक परिस्थिति वश ऐसा हो रहा, ऐसा जानियेगा, पर जैसा मेरा स्वरूप है वैसा ही सब जीवोका है। जैसे आपके घरमे रहने वाले जीव हैं वैसे ही सब जीव है। सबमे परमात्मस्वरूपके दर्शन करें। यदि यह प्रकृति बन जाय कि किसीसे भी बोलें, नौकर हो तो, मजदूर हो तो, एक बार यह स्मरण कर लें कि इनमे भी परमात्मस्वरूप है। बात व्यवहार करें, हुकुम भी दें, पर उसमे परमात्म स्वरूपका स्मरण हो जाय और फिर आप जो वाणी बोलें तो उसे वह फिर भगवानकी वाणी जैसा समझेगा, आपकी रुचिपूर्वक आज्ञा मानेगा। आप प्रसन्न

होंगे, दूसरा भी प्रसन्न होगा और जहाँ उस परमात्मतत्त्वको भूल गए, आज्ञा देने वाला भी क्लेशमें है और आज्ञा लेने वाला भी क्लेशमे है। तो आज्ञा देने वाला गर्वसे आज्ञा देगा, दूसरोको तुच्छ समझकर देगा, दूसरा अपनेमे तुच्छताका अनुभव करता हुआ लेगा। आज्ञा देने वाला भी दुःखी और आज्ञा लेने वाला भी दुःखी। कही यह न समझना कि जिनपर हुक्म चलता है दुःखी वे ही है। उनसे भी अधिक दुःखी हुक्म देने वाला होता है। आज्ञा लेने वालेको क्या? छोटा सा कर्तव्य, जो कहा सो कर दिया, किन्तु आज्ञा देने वालेपर कितना भार है? सब सम्हालें, यह भी न बिगड़े, यह भी काम चले, यह भी बने। मतलब यह है कि संसारमे सबको क्लेश है।

(४२) **शाश्वत आनन्दके प्रयासमें विवेक**—जो अपने परमात्मस्वरूपका दर्शन करे और दूसरे जीवोमे जो परमात्मस्वरूपका स्मरण करे ऐसा उदार विशाल हृदय जिसका हो गया है वह धर्ममूर्ति, वह भव्य जीव बात-बातमे स्वयं भी प्रसन्न है और दूसरा भी प्रसन्न रहता है। संसारमे कोई अपना गड़बड़ बनानेका काम नही पडा है, यहाँसे तो बिस्तर बंडल बोरिया सब छोडकर जाना ही पड़ेगा। धर्मदर्शनका नाता सच्चा नाता है, बाकी सर्व सगका नाता यह मेरे आत्माके लिए हितकारी नाता नही है। बड़े-बड़े चक्री हुए, इतिहासमे बड़े-बड़े राजा हुए—चन्द्रगुप्त, सेल्यूकस, जहाँगीर वगैरह, जिन्होने अपने-अपने जमानेमे बड़े-बडे किले बनवाये, महल बनवाये, तो उसका क्या फल हुआ? हम अपने आपमे इस ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वकी भावनाको दृढ बनायें तो यह है सर्वसिद्धि। आनन्द बातमे नही, न वाणीमे है, न सुननेमे है। एक अदाज भर कर लो कि जिस बातके सुननेको भी कुछ आनन्द सा आता है। जिस बातके वोलनेमे भी आनन्द सा होता है, उसके प्रयोगमे कितना आनन्द होगा। बात स्पष्ट सही सीधी है। प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र है, निरन्तर उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है, किसीका अस्तित्व किसी अन्यकी दयापर नही है, ऐसी स्वतन्त्रता ऐसा सत्त्व जब है तो हमे क्या अधिकार है कि मै झूठ मूठ ऐसा समझ लूं कि यह तो मेरा ही है। यह तो मेरे ही अधिकारमें है। यह पुत्र, यह घर, यह स्त्री, यह पिता ये सब मेरे है ऐसा माननेका हमको अधिकार नहीं है। व्यवहारकी बात व्यवहारमे है, लेकिन श्रद्धामे हम नही कह सकते कि मेरा कौन है। "जहा देह अपनी नही, वहां न अपना कोय। घर सम्पति पर प्रकट ये, पर है परिजन लोय।" इस जीवनमे तो हम आप हिसाब बनाते है, ऐसा काम कर ले कि बाकी जिन्दगी सुखमे गुजरे, इतनी दूकान बना लें, इतनी आय कर ले, फिर बैठे-बैठे सुखसे जिन्दगी कटेगी। ऐसा हो नही पाता, किसीके भी नही हुआ, क्योकि कषाये दूर हो तब शांति मिले। कषाये तो और बढती जाती हैं, पर सोचते जरूर हैं ऐसा सभी लोग कि ऐसा कुछ काम बना

लें कि बाकी जीवन बड़े सुखमें बीते। अच्छा थोडा बना लिया। अब मरेके बाद जहां जन्म लेंगे वहांका क्या प्रोग्राम बनाया ? यहाँ कुछ जबरदस्ती थोड़ा बहुत कुछ मान भी लिया, पर मरेके बाद, इस देहको छोडनेके बाद जो दूसरी देह मिलेगी उस जीवनके लिए क्या किया ? क्या करें ? मरकर अगर यहीं मक्खी मच्छर बन गए तो क्या धर्म, क्या जैनशासन ? सबसे हाथ धो बैठे ? देखिये—परलोक है, हमारी सत्ता है, हम पहलेसे हैं, हमेशा तक रहेंगे, क्योकि हम हैं, यह ही सबसे बडा भारी प्रमाण है। हम है इसलिए अनादिसे है और अनन्तकाल तक है। किसी भी है की अजीवके साथ कोई कल्पना ही नही बन सकती। है तो उसका अभाव हो ही नही सकता। भले ही परिणतियां बदले, कुछसे कुछ श्रद्धा बने, मगर अभाव नही हो सकता। हम है तो सदा रहेगे। जब मुझे सदा रहना है, अनन्त काल तक रहना है तो कैसे हमे रहना चाहिए, यह भी तो ध्यानमे लायें।

(४३) ज्ञानमात्र अन्तस्तत्त्वके अनुरूप प्रवर्तनमें उभयलोकमें समृद्धि—दो पुरुष विवाद करने लगे। एक परलोकको मानने वाला और एक परलोकको न मानने वाला। कुछ विवादके बाद इस बातपर आये कि भला परलोक न मानने वाले भाई यह तो बताओ कि हिंसा, झूठ, चोरी आदिक पाप करके इस जीवनमे सुखी रह सकते हो क्या ? बोला कि नहीं रह सकते। तो इस जीवनमे भी सुखी रहनेके लिए सदाचार चाहिए ना और यदि परलोक निकल आया तो सदाचारके प्रतापसे वहाँ भी क्या बाधा आयगी ? और जो परलोक नही मानते वे यहाँ स्वच्छन्द रहते तो यहाँ भी दुःखी और परलोक निकल आया तो वहाँ भी दुःखी। अनेक मनुष्योका जाति स्मरण सुना जाता है वह परलोकका ही तो साधक है। बच्चा उत्पन्न होता है तो भले ही धाय अथवा माँ बच्चेको मुखस्थानसे लगा दे मगर दूधका गुटकना, पेटमे ले जाना यह बात सीखनेमे तो बहुत समय लगता, मगर वह तो तुरन्त गुटक जाता। सस्कार था उसके पूर्वजन्मका। आहार सज्ञाका संस्कार था। जो सत् है उसका अभाव नही, हम है तो हमारा अभाव नही। अब हमको सदाके लिए सुख शान्ति मिले ऐसी कोई बात सोचे तो भली है कि बुरी ? केवल एक जीवनके ही सुखकी बात सोचना और आगेका कुछ भी ख्याल न रखना यह तो भला नही है। इस भवमे भी सुखी रहो, आगे भी सुखी रहो और सदाके लिए सर्व झगडोसे मुक्त होकर सदाके लिए शान्त हो ऐसा ही उपाय करनेमे भलाई है। मोह करने पर भी कौन सी सिद्धि बना लेते है। न करें मोह, घरमे रहे तो भी है तो वह ही पुत्र, मित्र, स्त्री, क्या टोटा पडा ? बल्कि मोह करनेसे टोटा है। मोहमे पुत्र स्वच्छन्द बन जाय, खुद खराब हो जाय, क्योकि मोही पिताका पुत्र पर प्रभाव नही रह सकता। मोहमे लाडला बन गया। पुत्रको कोई भय नही रहता और पितासे कैसा ही

पेश आ सकता है और निर्मोह हो पिता, अपने भावोमें अज्ञानरहित हो पिता तो पिताकी प्रवृत्ति भी ठीक रहेगी और पुत्र भी बडी आज्ञा और नम्रतामें रहेगा। मोही पुरुषका प्रभाव उत्तम नही होता परिवारमे, किन्तु निर्मोह पुरुषका प्रभाव परिवारमे उत्तम होता है। तो निर्मोह रहनेमे इस जीवनमे भी आनन्द पाया और आगे भी आनन्द पाया। वह निर्मोहता कैसे प्रकट हो ? उसका उपाय है वस्तुस्वरूपको ही समझकर अपने को सही स्वरूपमें अनुभव करना। मैं ज्ञानमात्र हूं।

सभी महर्षि संत दार्शनिकोने चाहा तो यह होगा कि जो कल्याणका मूल साधन है ज्ञानमात्र अतस्तत्वका अनुभव उसके ही विषयमे बातकी होगी। लेकिन जब एक कानसे दूसरे कानमें बात जाय। दूसरेसे तीसरेमे जाय। हजार कानो तक यो पहुंचे तो बात कुछसे कुछ बन सकती है। यह भी ऐसा होता है और फिर कहने वालेका आशय कुछ हो और सुनने वालेका आशय कुछ हो तो वहाँ विपरीत बात तो आ ही जाती है। वहाँ तो था ज्ञान मात्र अतस्तत्वके अनुभवका वहाँ किसीको मालूम हुआ कि वहाँ फिर रहना क्या है ? जैसे कि लोग पूछते कि भगवान तीनो लोकको जानते तो वे बेकार जानते। अरे उनसे आधा ही ज्ञान हमे होता तो हम कितना ही धन कमा डालते। समझ जाते कि इसका भाव बढेगा तो पहले ही खरीदकर रख लेते और उससे फायदा उठा लेते। तो भाई यह ससार ऐसा ही है, यहाँ विभव उसको ही अलौकिक मिलता है जो विभवसे अलिप्त रहता है। जो छायाको पकडने चलता है छाया उससे दूर ही भागती है। जो छायासे विमुख होकर चलता है, छाया उसके पीछे चलती है, और फिर तीनो लोकका भी वैभव मिल जाय तो भी आनन्द न आयगा और एक सर्व विविक्त ज्ञानमात्र अंतस्तत्वका दर्शन होगा तो अलौकिक आनन्द जगेगा। छोटे छोटे बच्चे तो किसी रेतीले स्थानपर रेतको अपने पैरपर रखकर उसे थपथपाते हैं, उससे पैर निकालकर एक घरसा बना देते है और कहते है कि मेरा घर बन गया। उस घरको अगर दूसरा लडका मिटा दे तो लड़ाई ठन जायगी और जिसने वह घरबूला बनाया, अपने पैरपर रेत चढाकर जिसने वह घर बनाया वह बच्चा अपनी ही लातसे अपना घर मिटाता है तो खुश होकर मिटाता है। तो अज्ञानसे हमने अपना एक घरबूला बनाया, मिथ्या भ्रमपूर्ण एक जाल बनाया तो हम ही क्यो न प्रसन्न होकर इस जालको एक लातसे उडा दें। मिटना तो है ही। दूसरा मिटायेगा तो तकलीफ पायगा। दूसरा न मिटाये, उससे पहले खुद ही मिटा डालें तो आनन्द मिलेगा। यह ही तो हो रहा है। जन्म लिया, मरण करते है, करना पडता है, दूसरा मिटाता है यह खुद नही मिटाना चाहता, आयुका क्षय होता, मिटाना पड़ रहा, फिर सयोग होता, फिर वियोग होता, ये सब बाते चल रही है। तो रोजके वियोग जीवनके वियोग

में ज्ञानबलसे इन सबसे न्यारा अपनेको समझ लूं अभी तो वियोग हो गया, मगर परवश होने वाला वियोग उस क्लेशमे है और सुवश वियोग कर लेवे अपने ज्ञानबलसे सबसे निराला ज्ञानमात्र ज्ञानस्वभाव अपने परमात्मस्वरूपमे आ जाय तो वियोग हो गया सबका । तो अपनी बुद्धिबलसे ऐसा कोई वियोग बनाये तो उसमे तो प्रसन्नता है, आनन्द है, यह अभ्यास रोज-रोज करनेका है । धर्मके लिए और काम करनेको है क्या ? केवल विभक्त एकत्व चैतन्यस्वभावके आश्रयणका यह ही काम करनेका है ।

(२३) अन्तस्तत्त्वके लक्ष्यको न भूलकर आवश्यक कर्म करनेका अनुरोध—इस स्वभावके आश्रयके करनेमे हमारा साहस नही होता, हमारी रुचि नही होती, हम सफल नही हो पाते तो भी धुन यह ही बनावें और सफल होनेके साधन बनायें, वह साधन है देवदर्शन, स्वाध्याय, सामायिक आदि । करने योग्य काम एक ही है । ज्ञानमात्र अतस्तत्त्वकी प्रतीति और उस ही मे उपयोगकी स्थिरता । तब ये कहने मात्रको थोडे ही हो जाते है । वहाँ शंकायें करते है तो उसका साधन है यह सब । देवदर्शन, श्रावकके ६ कर्तव्य । उन षट्कर्मोंको करते हुएमे उद्देश्य न भूलें तब तो सही काम बनेगा नही तो कई बातें विडरूप हो जायेंगी । जैसे एक सेठने अपनी लडकीकी शादीमे जीमनवार की, पातल परोसी, पत्तेके पातल । मिठाइयाँ बनवायी, वे भी परोसी । और, साथमे यह सोचा कि ये सब जीमने वाले लोग हमारी पातल मे खा जायेंगे और हमारी ही पातलमे छेद कर जायेंगे । दांत खरोचनेके लिए उस पातलमे से सीक निकालते है । जिस पातलमे खाया उसी पातलमे छेद भी किया यह आदत है सबकी । तो सेठने सोचा कि जहाँ इतनी-इतनी मिठाइयां वितरण कर रहे है वहाँ एक एक सीक भी धर दें सो चार-चार अगुलकी सीक भी साथमे परोस दी ताकि लोगोको पातलमे छेद न करना पड़े । खैर उस जीमनवारके बाद सेठ तो गुजर गया । उसके बाद उसके लडकेने अपनी लडकी का विवाह किया । वहाँ उसने सोचा कि मैं अपने पिताजी से भी अधिक अच्छे ढगसे विवाह करूंगा । पिताजो ने दो तोन प्रकारकी मिठाइयाँ बनवायी थी तो मैं ५-६ प्रकारकी बनवाऊँगा और पिताजी ने चार अगुल ही सीक परोसी थी, हम १ विलास्तकी डंडा परोसेंगे । खैर उसने कई तरहकी मिठाइयां भी परोसवायी और साथ ही एक-एक बेथाका एक-एक डडा भी परोसवाया । तो देखिये वहाँ चार अगुलकी सीकके परोसनेका उद्देश्य न जानकर एक एक बेथाका डडा परोसनेकी नौबत आ गई । तो भाई षट्कार्योंको करते हुएमे अपना उद्देश्य न भूलें । उद्देश्य भूल भूलकर की जाने वाली समस्त चेष्टायें विडम्बनाका ही कारण बनती हैं ।

(४५) आत्मस्वरूपकी ज्ञानघनता—मैं ज्ञानघन हू, स्वरूपद्रष्टा, अपने आपमे मनन कीजिये कि मैं ज्ञानघन हू, घनका अर्थ है ठोस, वजनदार नही, किन्तु ठोस । भले ही ठोस

होनेके कारण स्कंध वजनदार होता है लेकिन घनका अर्थ वजनदार नही, निरन्तर वही वही होनेका नाम घन है। जैसे कहते कि यह लकड़ी ठोस है, सारभूत है, तो उसका अर्थ यह है कि इस लकडीके बीच कोई अन्य चीज नही, वह लकडी लकड़ी हो है, यो वह ठोस है। तो यह आत्मा ज्ञानघन है, ज्ञानसे ठोस है अर्थात् यह ज्ञान ही ज्ञान निरन्तर है, स्वभाव, सहज ज्ञानभाव प्रति प्रदेशमें निरन्तर है। जैसे जलसे भरे हुए कलशमे बीचमे बिन्दु मात्र भी जगह खाली नही, किन्तु ठोस है पानीसे। जैसे कलशमें चने भर दिए जायें तो वहाँ ठोस नही है, बीच-बीचमे अन्तर है। जल भरा हो तो अन्तर नही रहता। जल भरे हुए कलशको लोग क्यों सगुन मानते है कि जलपूर्ण कलश ज्ञानघन आत्माकी याद दिलानेमे उदाहरणभूत है। जैसे यह जल भरा कलश भीतरमे बीचमे ठोस है, एक प्रदेशमात्र भी जलसे शून्य नही है, जल भरा रहता है, यों ही यह आत्मा ज्ञानघन है। पहली बात बतायी थी कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। और अब बताया जा रहा है कि मैं ज्ञानघन हूँ। विरोध दोनोमें नही है, पर एक विधिका अन्तर है। ज्ञानमात्र हू ऐसा कहनेमे यह आया कि मैं ज्ञानमात्र हू। इसमे और कुछ चीज नही है, और ज्ञानघन कहनेमे यह आया कि यह कोई असार बेहोश वस्तु नही है, अधूरी नही है, किन्तु यह परिपूर्ण ज्ञानघन है, इसी कारण यह अपरिपूर्ण नही है। लोग अपनेको यह अनुभव करते कि यह मैं पूरा नही बना, अधूरा हूँ, लेकिन देखो स्वभावको यह कही अपूर्ण है ही नही. सर्वत्र पूर्ण है। सर्वस्थितियोमे पूर्ण है, सर्वदा पूर्ण है, जो अपूर्ण हो वह सत् ही नहीं है। कोई भी सत् अपूर्ण नही होता। किसी द्रव्यकी सत्ता आधी हो पायी हो और आधी होना बाकी हो, ऐसा कही नही है। जो है सो पूर्ण है। पूर्ण था, पूर्ण रहेगा, लगातार पूर्ण ही पूर्ण है। मैं आत्मा ज्ञानघन हू, ज्ञानसे परिपूर्ण हूं।

(४६) अपूर्णता व परमें कृत्यताका अभाव होनेसे ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वमें कष्टका अनवकाश—मोहमे जो लोग अपनेको अधूरा समझते है उनको कुछ करनेको पड़े का विकल्प है और जिनको कुछ करनेको पड़ा हो उनको चैन नही है, शान्ति नही है, आराम नही है, यह सब कल्पनाओकी बात है। वहाँ इस जीवमे अधूरापन नही, न कुछ आधा किया है। आधा करनेको पड़ा हो ऐसा भी नही है। तब जो पर्याय होती है वह पूर्ण है। करनेको पडा क्या ? पर मोही जीवकी कल्पनामे यह बात होती है कि अभी यह काम अधूरा है, इसे पूरा करना है। मोहका विषय है अनेक द्रव्य। एक द्रव्यमे मोह उत्पन्न नही होता। किसी भी एक द्रव्यको देखें, खालिस द्रव्यको देखें वहाँ मोह ही नही हो सकता। स्कधोमे मोह है। यह अनेक द्रव्योंका पिण्ड है, एक द्रव्य दृष्टिमे हो तो मोह किसपर करे। और इसीलिए निश्चयनय का महत्त्व भी कल्याणके उपायमे बताया है। वह एक द्रव्यको निहारता है। तो जैसे निश्चय

नय एक द्रव्यको निहारनेका उपाय होनेसे उपयोगी होता तो व्यवहारमें भी निषेधमुखेन कि ये विभाव ये नैमित्तिक है, औपाधिक है, मेरे स्वरूप नही हैं, यो निषेधमुखेन इन परसम्पर्कोंसे जुदा करके अपने स्वभावकी ओर आनेका अवसर देता है। एनकेन प्रकारेण यह आत्मा अपने शुद्ध स्वभावकी ओर दृष्टि करे तो इसको मुक्तिका मार्ग मिलता है। मैं परिपूर्ण हू, ज्ञानघन हू, कोई मकान बना रहा है, बना नही रहा, कौन बना सकता ? कौन दूसरे पदार्थोंकी परिणतिको कर सकता ? किन्तु लोकमे दिखता ही है, कहते ही हैं कि मकान बनाया जा रहा है, भीत उठ गई, छत अभी नही पड़ी, कहते हैं कि अधूरा पडा है काम। इसे पूरा करना है। विकल्पमे माना कि ऐसा ऐसा हो इसे पूरा कहते है। ऐसा हो नही पाया तो यह अधूरा है, पर वहाँ सभी पदार्थोंमें परिपूर्णता है। भीत वही है, भीतमे जो अणु है, जहाँ जो भी पदार्थ है, किसीकी आधी सत्ता नही, समस्त परिपूर्ण हैं। मोहीने सोचा कि ऐसा होना चाहिए इतना सम्बव और इतना सयोग, और उसके न होनेको अधूरा कहते है। ज्ञानीको बाहरमे कुछ करनेको पडा ही नही है, क्योकि उसने निर्णय किया है कि समस्त पदार्थ परिपूर्ण हैं। परिपूर्ण पूर्ण पर्यायको निरन्तर उत्पन्न करता रहता है। मेरे करनेको बाहरमे कुछ पडा ही नही है। देखिये सबको शान्ति मिलती है इसी भावके आधारपर कि मेरे करनेको कुछ पड़ा नही है। करनेपर भी करनेके भावमे शान्ति नही है, किन्तु करनेको अब कुछ नही है इस भावमे शान्ति है। मोहमे लग रहा यो कि काम करनेसे शान्ति होती है, पर जिसको जब भी जितनी शान्ति मिली उसको "मेरेको कार्य नही है" इस भावसे शान्ति मिली है मकान पूरा बन चुकनेपर जो एक शान्तिका अनुभव कर रहा, हो गया काम। कोई भी कार्य पूर्ण कर लेनेपर उसको शान्तिका अनुभव होता है वह शान्ति कार्य करनेसे मकान बनानेसे नही है। जब यह भाव आया कि अब वह कार्य करनेको नही रहा तब शान्ति मिलती है, और जब तक चित्तमे यह बात बनी थी कि अभी काम करनेको पडा है तब तक अशान्ति थी। इसमे उसने काम करनेके बाद एक भाव बना पाया कि मेरे करनेको अब काम नही है। ज्ञानी मुनि सत साधु कामको छुवे बिना ही पहलेसे ही यह भाव रखते है कि मेरेको बाहरमे कुछ काम करनेको नही है।

(४७) कृतकृत्यताके भावमे शान्तिका लाभ—शान्ति मिलती है सबको कृतकृत्यताके भावमे। एक मित्रका पत्र आया कि हम १० बजेकी रेलगाडीसे इस नगरसे गुजर रहे हैं सो आप हमे स्टेशनपर आकर मिलें। मित्रका पत्र देखकर उसको उससे मिलनेकी जबरदुस्त उत्कठा हुई। मिलना है, मिलना है। रोज ८ बजे तक नीद लिया करते थे, पर उस दिन वह इस उत्कठासे काम कर रहा था कि हमे मित्रसे मिलने जाना है। इस भावसे वह ६ ही

बजे जग गया। सब काम जल्दी-जल्दी करने लगा। नहाना, नास्ता करना और जल्दी ही स्टेशन पहुंचना। वहाँ पूछा कि यह ट्रेन किस समय आ रही है? तो वहाँ बताया कि उस ट्रेनका तो १० बजे आनेका समय है पर आज १५ मिनट लेट आ रही है, लो यह बात सुनकर वह कुछ रंजमे आ गया। आज उस ट्रेन पर उसे करुणा उत्पन्न हो गई, दुःख मानने लगा—हाय लेट है, रोज-रोज यह बात उसे न आ पाती थी, क्योंकि उसे काम करनेको पडा है ऐसा मनमे भाव है। गाडी आयी, सभी डिब्बोमें दृष्टि लगाया। जिस डिब्बेमें वह मित्र बैठा था उसमे पहुचा वहाँ मित्रसे मिला और एक आराम पाया, शान्ति पायी। थोडी ही देर बाद वह मिलने वाला शख्स खिडकीसे झाँकने लगा। उतरनेकी सोचने लगा। कही गाडी चलनेको तो नही है, गार्डने कही सीटी तो नही दी, कही हरी झडी तो नही दिखा दी। अब यहाँ बात पूछते हैं कि भाई मित्रसे मिलनेपर अगर आराम मिला है, शान्ति मिली है तो फिर मित्रसे मिलनेका काम क्यो छोड़ते हो? तुम्हे शान्ति ही तो चाहिए। मित्रसे मिलनेमें शान्ति मिले तो मित्रसे मिलते ही रहो। फिर उससे बिछुडनेकी बात क्यो सोचते? उस गाड़ीसे उतरनेकी बात क्यो पूछता? मालूम होता है कि उसे मित्रसे मिलनेकी शान्ति न थी। शान्ति थी इस भावकी कि अब मेरेको मित्रसे मिलनेका काम नही रहा। मनमे यह भाव आया कि अब मेरेको मिलनेका काम नही रहा इसकी शान्ति थी। मित्रसे मिलनेकी शान्ति न थी। प्रत्येक कार्यकी ऐसी ही बात है। पञ्चेन्द्रियके विषयोंको भोगता है जीव और उसमे सुख साताका अनुभव करता है। इन विषयोके भोगनेसे किसीको शान्ति नही मिलती, किन्तु अब मेरेको यह विषय भोगनेका काम नही रहा, इस प्रकारका जीवमे ज्ञान बना, इस ज्ञानसे शान्ति मिली। शान्ति मिलती है कृतकृत्यताके भावसे।

(४८) **तत्त्वज्ञानमें कृतकृत्यताका दिग्दर्शन**—मैं ज्ञानघन हूं, परिपूर्ण हू। मेरेको करनेके लिए कुछ नही पडा है। समग्र वस्तु क्या है? स्वय उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है। उनमे उनके ही कारण उत्पाद व्यय चलता रहता है। कोई किसीको परिणति कर सकता नही। मैं अपनेमे अपना उत्पाद व्यय करता हूं। समस्त पदार्थ अपनेमे अपने आप अपना उत्पाद व्यय करते हैं। मेरे करनेको कहाँ क्या पडा है? मैं कुछ कर ही नही सकता बाहर। तो मेरे करनेको बाहरमे कुछ काम नही, इस भावकी शान्ति है ज्ञानी पुरुषको। और कृतकृत्यता भी इसीमे प्रकट है। हम अपनी रात दिनकी घटनाओमे यह ही तो खोजें कि जब मेरेको शान्ति मिलती है तो किस ढंगसे मिलती है? करनेकी भावनासे शान्ति नही, किन्तु करनेको कुछ नही पड़ा है इस भावनासे शान्ति है। खूब परीक्षा कर लो अपनी सारी बातो की। भोजन करनेपर जो शान्तिका अनुभव करते तो वहाँपर भी बहुत निर्णायक दृष्टिसे देख

लो, भोजन करनेसे शान्ति नही मिली, किन्तु भोजन कर चुकनेपर जो यह भाव बना कि अब मेरेको भोजन करनेका काम नही रहा उसकी शान्ति मिली। यह बात समझना, कुछ कठिन होगी, क्योकि सबको भूख लगती है। खाते है और पेट भरनेपर ही आराम कर पाते है। भूखमे कोई आराम मानता ही नही। तो न माने, किन्तु तथ्य यही है कि मेरे करनेको अब कुछ नही रहा, शान्ति इसकी है, अन्यथा अनेक दिनोका उपवास करने वाले मुनिजन साधु संत कैसे शान्त है? बिना भोजन किए ही उनका यह निर्णय चल रहा कि मेरे करने को कुछ नही पड़ा, भोजन करनेका कार्य मेरेको नही पडा, उसके शान्ति है। यह एक कठिन उदाहरण है भोजनका, पर अन्य उदाहरणोसे बहुत सुगमतया जान लेंगे कि हाँ जब भी शांति मिलती है तो काम नही रहा, मेरे करने कार्य नही पडा, इस भावकी शान्ति मिलती है। और इस तरह भी समझ सकते है कि यह मनुष्य किसी विषयके बाद किसीको भी देखने सुननेपर किसी भी विषयके बाद यह अपनेमे किस विधिसे शान्तिका अनुभव करता और कैसे यह अपनेमे तृप्ति लाता है, जैसे मानो निपट गया, उससे उपेक्षा हो गई, अब उस ओर दृष्टि भी नही करता, ये विधियाँ बन जाती हैं जब कि वह शान्तिका अनुभव करता है। यह है एक शान्तिकी विधिकी बात।

(४९) भोगत्याग बिना समृद्धिकी असंभवता—भैया! अब थोडा यह देखें कि इस जीवको ये भोग इसके उत्थानके कारण है या शान्तिके कारण है या भोगसे क्या उद्धार है? देखो—भोगके त्यागे बिना भोग भोगनेका भी सामर्थ्य नही रहता। खानेका त्याग करनेके बाद ही इसको खानेका आनन्द आता है। खाता ही रहे, खाता ही रहे, ऐसा अगर यह अपना कुछ समय गुजारे तो यह खानेके लायक भी नहीं रहता। किसी भी इन्द्रिय विषयका त्याग हुए बाद ही उस इन्द्रियविषयको भोगनेका सामर्थ्य पाता है और उसमे पूर्ति कर पाता है। कोई सनीमाको देखता ही रहे तो वह ऊब जायगा, थक जायगा, उसका त्याग करे कुछ समय को, भले ही १५-२० मिनट बाद फिर सनीमामे पहुंच जाय, मगर कोई सनीमा देखता ही रहे, ऐसा कोई नही कर सकता। भोगता ही रहे, भोगता ही रहे, ऐसा कोई नही कर सकता। त्याग बिना भोक्ता भी नही बन पा सकता। त्याग करके ही कोई भोगका सुख पा सकता है, और यदि कोई सदाके लिए त्याग कर दे तो उसके सुखका क्या कहना? अद्भुत सुख होगा। मैं ज्ञानघन हू, ज्ञानसे भरा हुआ हू, परिपूर्ण हूं। मेरेको कुछ काम ही नही पडा, ऐसा जहाँ विश्वास है उसे अपने आप धैर्य है, अपने आप समता है और शान्तिका अनुभव है। इसके विरुद्ध जिसमे यह भावना लग रही है कि मैं तो अधूरा हू, मेरेको तो बहुत काम है, उससे निरन्तर बेचैनी है। तो देखना है अपने आपको कि मैं ज्ञानघन हू।

(५०) ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वमें अपूर्णता न होनेसे क्रियाव्यग्रताका अभाव—भैया ! लगता होगा ऐसा कि यह आत्मा मैं तो शून्य हूं । इसमे कुछ रखा ही नही है, कोई ठोसकी बात ही नही है । जैसे कोई भी द्रव्य गैर ठोस नहीं होता । बताओ आकाश पोला है कि ठोस ? आकाश भी पूरा ठोस है, पोला जरा भी नही है । आकाशका जो स्वरूप है, आकाश के जो प्रदेश हैं उनमें निरन्तर आकाश बराबर ठोस पड़ा हुआ है । हम दूसरे द्रव्य नही हैं । ऐसा निरखकर सोचना है कि आकाश पोला है । पर आकाशका जितना स्वरूप है उसमें आकाश निरन्तर बना हुआ है, वह घन है । प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें परिपूर्ण है, ठोस है। धर्मद्रव्य उससे स्वरूपमें वह अपने आपमे ठोस है । यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे अपने आपमें ठोस हूं । निरन्तर ज्ञान ही ज्ञान समाया हुआ है । पोला हो तो कुछ जरूरत भी हो कि उसका पोल भरना है । जब मैं ज्ञानघन हूं, ऐसा होनेकी गुंजाइस ही नहीं कि इसमें कोई चीज समा सके तो उसमे करनेको क्या पडा फिर, लेकिन जिसको अपने ज्ञानघन स्वरूपकी सुध नही वह अपनेको सर्वत्र असहाय, दीन, कायर अनुभव करता है और विषयोंसे सुखकी आशा लगाये फिरता है, और इसी कारण कष्ट विपत्ति उपसर्ग उपद्रवोसे भी घबड़ाया रहता है ।

(५१) परमें इष्टत्वके भ्रममें अशान्ति—लोकमें ऐसा कोई पुरुष नही जिसपर बाहरी संकट नहीं आया, उपद्रव नही आया । चाहे वह धनी हो, चाहे वह ज्ञानी हो, लोक दृष्टि से भी सबपर वियोग आयगा, सबपर अनिष्ट संयोग होते, सबको शरीरमे वेदना भी होती और ऐसा लगाव रखते हैं कि ये दुःख तो अपने आप मोल लिए रहते हैं । सब पर उपद्रव आयेंगे । यदि दुःखी नही होना है तो अभीसे ज्ञानको सम्हाल रखना चाहिए, वियोग सब का होगा । पुरुष स्त्री है, ये क्या चिर काल तक (अनन्त काल तक) साथ रहे आयेंगे ? कुछ ही वर्षका तो साथ है । कोई तो बिछुड़ेगा पहले । पुरुष बिछुडेगा तो स्त्री दुःख मानेगी, स्त्री बिछुडेगी तो पुरुष दुःख मानेगा । बिछुडना तो निश्चित है । पिता पुत्रका सम्पर्क है, बिछुड़ेगा तो कभी । उपद्रव तो आयेंगे ही लोकके । अब यदि इनमे कष्ट नही मानना चाहते तो इसका उपाय सिवाय ज्ञानके और कुछ नही है । सही ज्ञान हो तो कष्ट नही रहता, मिथ्याज्ञान हो तो कष्ट हो जाता है । छोटी-छोटी बातोमें भी यह बात पायेंगे । विवाह शादी बारातोमे हजारों रुपयेको बारूद आतिशबाजी वगैरहमें फूंक दो जाती है, उसका कुछ भी खेद नही मानते और कोई २ रुपयेकी कटोरी गुम जाय तो उसका खेद मानते है, यह फर्क आता है । कहां तो दो रुपयेको कटोरी जिसके गुमनेका खेद मानता और हजार रुपयेको बारूद यों ही खो दी, पर उस के प्रति रंच भी खेद नही मानता । तो यह फर्क यों आया कि उसने हजार रुपयेकी बारूदके

विषयमें पहलेसे ही यह निर्णय बनाये हुए था कि यह तो फुंकनेके लिए ही है, यह तो नष्ट करनेके लिए ही है। सो नष्ट होनेपर कुछ भी खेद नही होता, और कटोरीके बारेमे सोच रखा था कि यह तो जिन्दगी भर रहनेकी चीज है, वह न रही इसका खेद मानता। तो हमारी रोजकी घटनाओमें भी यह बात दिखती है कि जहां विपरीत ज्ञान बनाया वहां क्लेश है और जहां अनुरूप ज्ञान बनाया वहां क्लेश नही। कोई पुरुष इस समस्त सयोगके सम्बधमें यह निर्णय बनाये कि सबका वियोग होगा, सब मिटेंगे, ये मिटनेके लिए ही मिले है तो मिटनेका वह खेद न मानेगा, और जिसने यह बुद्धि बनायी कि ये मेरेको मिले है, सदा रहेंगे, इनसे मेरेको फायदा है, हित है, तो कदाचित् वियोग होगा ही, तो उस समय कितना खेद मानता है। सम्यग्ज्ञानके सिवाय कोई अपनेको शरण नही है। धन वैभवमे या किसी संग, प्रसगमे जो ममता रहती है कि यह मेरा है, उसके साथ-साथ अनेक विपरीत ज्ञान भी रहा करते है अतएव उसको खेद रहता है, और सबसे विविक्त अपने आपके स्वरूपमे तुष्ट इस ज्ञानघन अंतस्तत्त्वमे अपनी स्वीकारता हो, हू मैं यह, उसको कष्ट न आयगा।

(५२) निजत्वनिर्णयपर भविष्य पर्यायोंकी निर्भरता—मैं क्या हू, इसके निर्णयपर ही मेरा भविष्य निर्भर है। इस देहको देखकर जो निर्णय बनाया है कि मैं यह हू तो उसका भविष्य स्पष्ट है कि उसको ससार मिलते ही रहेगे। जब शरीरको माना कि यह मैं हू तो आखिर यह भी तो भगवान है, शरीरको चाह रहा है तो शरीर मिलते ही रहेगे। अब यह बात दूसरी कि शरीर पानेमे कष्ट है, क्लेश है, पर इस प्रभुमे हम आप ससारियोकी बात कह रहे है। देहको चाहा, देहमे लगाव रखा तो धडाधड देह मिलते चले जायेंगे और देहसे निराला ज्ञानघन अपने आपको सोचना कि मै तो ज्ञानघन हू तो उसका ज्ञाता द्रष्टा रहनेका भविष्य बन जाता है। ज्ञाता द्रष्टा रहनेमे आनन्द है और किसी अन्यरूप माननेमे या कुछ काम करनेके विकल्पमे इसको आनन्द नही है। वह उपाय बनावें जिससे निर्लेप रह सकें, जिससे ज्ञाता द्रष्टा रह सकें, जिससे अपनेको अकिञ्चन अनुभव कर सकें। सच्चा स्वास्थ्य इसमे है। किसीसे पूछो कि तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है ? तो वह उत्तर देता है कि बहुत अच्छा है। क्या अच्छा है ? जरा हिन्दीमे बोलकर तो बताओ। क्या पूछा है ? हिन्दीमे इसका कोई शब्द सोचना होगा। क्या कहा जाय जिसको स्वास्थ्य कहा है जो दूसरे पुरुषने समझा है और उत्तर दे रहा है कि मेरा स्वास्थ्य बहुत ठीक है। हिन्दीमे कोई शब्द हो तो बताओ। अंग्रेजीमे कहेगे हेल्थ, उर्दूमे कहेगे तन्दुरुस्ती, ऐसे ही हिन्दीमे भी कोई शब्द होगा जिसका हमे ध्यान नही, पर स्वास्थ्य शब्द कहकर पूछा गया है कि तुम्हे अपने आपमे बैठनेकी बात कैसी बन रही है ? अपने आपमे ठहरनेका नाम स्वास्थ्य है। पूछने वाला यह पूछ रहा है कि

आप अपने आत्मामें स्थिर रहते हो या नही ? उत्तर देता है वह उल्टा—तन्दरुस्त हूं याने शरीरमें स्थित हूँ, शरीरसे वह अपनेको महान् समझता है, सम्पन्न समझता है । उत्तर उसके यो चल रहे, परन्तु परस्थ रहनेमे क्लेश ही क्लेश है और स्वास्थ्य होनेमे सुख है । वह स्व क्या है जिसमे स्थित होनेसे आनन्द मिलता है ? यह ज्ञानघन ।

(५३) ज्ञानघनकी दृष्टिमें कृतकृत्यताकी वृत्ति—मुझमे अधूरापन हो तो मैं कुछ करने के लिए सोचूं; पर मुझमे अधूरापन है हो नही । जब मैं परमात्मा होऊँगा तब भी मैं कुछ बनकर न होऊगा । जो हू सो ही साफ प्रकट बन जाऊगा । जैनशासनमे स्थापित मूर्तियोका निर्माण बनाकर नही होता है, हटाकर होता है । किसी पाषाणमे कोई मूर्ति बनाना है तो उसमे कुछ जोडा नही जाता, किन्तु हटाया हटाया ही जाता है । छेनी हथौडासे पत्थर हटाया, यह हटाया वह हटाया, केवल हटाने हटानेका काम होता है, मूर्ति जो थी सो प्रकट हो गई उसमे कुछ नही बनाया गया, जैसे गोबर गणेश बनाते हैं इस तरह जैन शासनमे मूर्ति बनाने का रिवाज नही है, वहाँ हटाने हटानेकी ही पद्धति है, बनानेकी पद्धति नही है । बना हुआ तो था ही । जो पाषाणस्कंध प्रकट हुआ वह जो था अन्दरमे सो प्रकट हुआ । ऐसे ही प्रभु बननेके लिए, प्रभुता पानेके लिए हमे भी अपनेमे बनानेको कुछ नही पडा । हटाने हटानेका ही काम पड़ा है । मोह हटावो, राग हटावो, द्वेष हटावो, शरीर हटाओ, कर्म हटाओ, विकल्प हटाओ, बनानेका कोई काम नही पड़ा । जो स्वभाव है वही प्रकट हुआ । अब हटानेका ढग यह है कि जो स्वभाव है उसका आश्रय करें तो ये सब हट जायेंगे और स्वभावको बनाना पड़ा हो, उसमे कुछ लगाना पडा हो ऐसी बात नही है । मैं परिपूर्ण हू, ज्ञानघन हू, अधूरा नही, ऐसा जो अपने इस परिपूर्ण स्वभावमे दृष्टि देता है और ऐसा अपनेको मानता है उसका कल्याण है । वही पुरुष कृतार्थ है । कृतार्थ उसे कहते है जिसके अर्थ कृत हो गए याने जो करनेका काम है वह कर चुका अर्थात् जिसको करनेके लिए कुछ नही पडा । यह कृतार्थता आती है अपनेको ज्ञानघन अनुभव करनेमे । वहाँ दीनताका अवकाश नही, अतृप्तिका अवकाश नही ।

(५४) चार दृष्टियोंसे आत्मपरिचयका पौरुष—पदार्थकी पहिचान चार दृष्टियोसे होती है द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव । जैसे एक इस पुस्तकका परिचय करना है तो जो दिख रहा है, जो पिण्डरूप है, जिसको हाथमे लिए हुए हैं, ऐसा भी देखा जाता है, यह हुई द्रव्य दृष्टि । यह पुस्तक कितनी लम्बी चौडी है, कितनी मोटी है, कितनी जगह घेरे है, इस दृष्टिसे भी पुस्तकका परिचय होता है, इसे कहते है क्षेत्रदृष्टि । यह पुस्तक किस ढंगकी है, पुरानी है अथवा नई है, कमजोर है अथवा पुष्ट है आदिक रूपसे भी पुस्तकका परिचय होता है, इसे

कहते है कालदृष्टि। और इस पुस्तकमे क्या गुण हैं उनको समझनेकी दृष्टि है भावदृष्टि। प्रत्येक पदार्थका परिचय चार दृष्टियोसे होता है। तो आत्माका भी परिचय इन चार दृष्टियोसे बनेगा। द्रव्यदृष्टिसे आत्मा शक्ति और पर्यायोंका पुञ्ज है। इसमे ज्ञान दर्शन चारित्र आनन्द आदिक अनन्त गुण है और अनन्त परिणमन हैं। उन सब गुण पर्यायोका पिण्ड यो निरखा, यह हुई द्रव्यदृष्टि। क्षेत्रदृष्टि—यह जीव कितना फैला हुआ है, इसका कितना विस्तार है यह समझना क्षेत्रदृष्टिसे है वर्तमानमे जीव शरीर प्रमाण है। कोई दार्शनिक कहते हैं कि बटके बीज की तरह बहुत छोटा आत्मा है और वह आत्मा बड़े जोर वेगसे चक्कर लगाता रहता है, सो ऐसा लगता है कि सारे शरीरमें आत्मा है। तो कोई दार्शनिक कहता है कि आत्मा तो सर्वव्यापी एक है। जिस देहमे उसको छाया है लगता है मोहियोको ऐसा कि आत्मा देह बराबर है। भिन्न-भिन्न प्रकारकी धारणायें है। जैनशासन बताता है कि आत्माका खुद निजकी ओरसे कोई आकार नही है। वह तो एक ज्योतिस्वरूप पदार्थ है अनादिसे जिस शरीरमे गया उस उस शरीर प्रमाण आत्मा रहा और जब मुक्त हुआ तो जिस शरीरसे मुक्त हुआ उस शरीरके बराबर आत्मा था। शरीरसे अलग होनेपर न कोई कारण ऐसा है कि इसका आकार बढा सके और न कोई कारण है ऐसा कि यह आत्मा इस प्रमाणको घटा सके। तब जो देहसे मुक्त हुआ है, मुक्त अवस्थामे उस आकार प्रमाण है। खुदकी ओरसे क्या आकार है? इसका निर्देश हो नही सकता इसे कहते हैं अनिर्दिष्ट सस्थान। तो यह आत्मा वर्तमानमे देह प्रमाण है। कुछ अवस्थायें होती है ऐसी कि जिन अवस्थाओमे आत्मा देहसे बडा भी हो जाता है, उन्हे कहते हैं समुद्धात। शरीरको न छोडकर बाहर भी आत्मप्रदेश फैल जायें ऐसी स्थिति होती है ७ घटनाओमे। जैसे किसीको वेदना तीव्र हो रही है, वेदना सही नही जाती है, सीमापार बुखार चढ़ा है, ऐसी कोई वेदना हो तो उस वेदनामें यह आत्मा शरीरसे बाहर भी निकल जाता है, पर शरीरको छोडकर नही, शरीरमें रहते हुए फैल जाता है जो शरीरसे बाहर भी पहुचता है और कोई सुयोग हो कि उस अवधिमें कोई औषधि रखी हो वहां तक पहुच गया। तो सम्भव है कि उसकी वेदना भी दूर हो जाती है। जब यह जीव कषाय करता है, क्रोध किया उस वेदनामे यह शरीरसे बाहर हो जाता है। तैजस समुद्धात, आहारक समुद्धात, केवली समुद्धातमे आत्मप्रदेश देहसे बाहर हो जाते हैं। दड, कपाट, प्रतर लोकपूरण, प्रतर, कपाट, दंड व प्रवेश ऐसे ८ समयोमे केवली समुद्धात लोकपूरणमे एक समय ऐसा होता है कि प्रभु सारे लोकाकाशमे प्रदेशसे व्यापक हो जाता है। मारणातिक समुद्धातमे जीव प्रदेश पहले जन्मस्थान तक फैल जाते है फिर वापस आकर मरण होता है। तो कुछ स्थितियाँ हैं ऐसी कि जिनमे यह आत्मा देहसे भी बाहर होता है,

पर एक सदाके लिए यह ही कहा कि आत्मा देह प्रमाण है। क्षेत्रदृष्टिसे पहिचानें प्रदेशका छोडकर पहिचानें और आत्मामें क्या परिणति चल रही है? क्रोध, मान, माया, लोभ, इच्छा विषय कषाय क्या परिणति चलती है, उस परिणतिसे भी तो आत्माका परिचय होता है। यह ज्ञानी है यह अज्ञानी है यह परमात्मा है, यह ससारी है, इस तरहका जो परिचय हो रहा है यह होता है कालदृष्टिसे और आत्मामे क्या शक्तियाँ है? सहज स्वभाव का भेद किया। पहिचाननेके लिए वहाँ गुण समझे गए। इसमे ज्ञानगुण है, दर्शन गुण है, चारित्रगुण है और आनन्दगुण है। शाश्वत गुणकी दृष्टि कहलाती है भावदृष्टि। इसी भावको अभेदरूपसे निरखा जाय तो वह है अभेदभावदृष्टि।

(५५) चार दृष्टियोंसे आत्मपरिचय करके चतुर्दृष्टिसे परे होकर अभेद भावदृष्टिसे परिचय करनेपर स्वानुभूतिका अवसर—आत्माकी पहिचान चारो दृष्टियोंसें है, पर अनुभव होगा तो अभेद भावदृष्टिके प्रतापसे होगा। जब इसको अनेकका विकल्प होगा, इसमे यह गुण है, इसमे यह पर्याय है, ऐसे विकल्पके समय स्वानुभूति नही जगती। परिचय करनेके लिए आवश्यक है। जब क्षेत्रदृष्टि से परखा कि आत्मा इतना फैला हुआ है, प्रदेशका विस्तार दीखा। देखो परिचय है, जानकारी करें सही बात है, किन्तु इस प्रकारकी जानकारीके समय स्वानुभूति नहीं होती। कालदृष्टिसे भी जब जाना कि आत्मामे यह परिणति है, यह दशा है, यह अवस्था है। जानें सही भी बात है, परन्तु कालकृत भेदके प्रयोगमे आत्माको स्वानुभूति नही मिलती। भावदृष्टिसे जब परखा कि आत्मा अनन्त गुणोंका पिण्ड है, देखा तो शाश्वत भाव मगर भेदरूप देखा ऐसी स्थितिमे भी स्वानुभूति नही है, किन्तु वे सब गुण जिसको समझानेके लिए बताये गए जिस एक अखण्ड स्वभावके परिचयके लिए भेद निरूपणासे गुणो का कथन किया गया, उस भेद स्वभावको दृष्टिमे ले, इस भेदको विलीन कर दें और एक अखण्ड चैतन्यमात्र स्वभावकी दृष्टि होना तो वहाँ स्वानुभूति होती है। इसी कारण जो ग्रन्थो मे जीवको चार विशेषताओंसे बाँधा है—जीव पदार्थ, जीव द्रव्य, जीवास्तिकाय और जीव-तत्त्व। बात तो कही गई जीवकी, पर जीवके साथ जो इतनी तरहके विशेषण लगाये गए उसका प्रयोजन भी यह ही है। यहां नामकरण और दृष्टियोंमें थोड़ा नामका भेद पायेंगे। जीव पदार्थ परखा जाता है द्रव्यदृष्टिसे। द्रव्यदृष्टिसे जाना गया जीवपिण्ड। जीवपिण्डका जो अर्थ है, जो गुणपर्यायोंके पिण्डभूत है वह परखा गया द्रव्यदृष्टिसे। क्षेत्रदृष्टिसे परखा गया जीवास्तिकाय, किन्तु उस अस्तिकायमें प्रदेशकी बात होती है और कालदृष्टिसे परखा गया तो कहलाया जीवद्रव्य। द्रव्य उसे कहते हैं जो अपनी पर्यायोंको प्राप्त करे, करता हुआ करे उसका नाम जीवद्रव्य है। द्रु धातुसे यह द्रव्य शब्द बना है। यह हुआ कालदृष्टिसे, और

आवरुद्धिसे कहलाया जीवतत्त्व। भेद अभेद चैतन्य चित्स्वरूप अनादि अनंत अचल स्वसम्वेद्य, चित्तचमत्कारमात्र जो ज्ञान स्पर्श द्वारा ही अनुभव किया जाय वह है जीवतत्त्व। तो जीवतत्त्वकी परखमे स्वानुभूतिका अवसर है।

(५६) ज्ञानघनके रूपमें जीवतत्त्वका अनुभव—वह जीवतत्त्व क्या है? ज्ञानघन। वहा अन्य विकल्प नही, ज्ञान ही ज्ञान, समग्ररूपसे सर्वत्र बना हुआ है। सहज ज्ञानस्वभाव। जीवसे मेल करनेका, मिलाप करनेका, दर्शन करनेका, अन्य कोई उपाय नही। केवल यह ही उपाय है कि ज्ञानस्वरूपमे आराधना बनावें। मैं ज्ञानमात्र हू। ज्ञानका ही उपयोग है, ज्ञान की ही तरगें है, ज्ञानका ही प्रसार है। तिर्यक्मे भी ज्ञान, ऊर्द्धतामे भी ज्ञान, प्रदेशमे भी ज्ञान, परिणतियोमे भी ज्ञान। ज्ञानघन और जब बिगडा हैं तब भी क्या है? ज्ञानकी ही तो कोई परिणति है। जब जीव सुख भोगता है तब क्या भोगता है। क्या आम, दाल, रोटी, चावल आदि इनको भोग सकता है यह जीव। उनसे तो सबध ही नही बन सकता। आत्मा अमूर्त है। जैसे आकाशमे भोजनका स्पर्श नही होता ऐसे ही आत्मामे भोजनका स्पर्श नही होता। और भोगता क्या है? ज्ञानकी परिणतिको भोगता है। ऐसी ही वर्तमान परिस्थिति है। ऐसा ही कर्मोदय निमित्त है कि जहा यह जीव अपने निरपेक्ष ज्ञानसे कुछ समझ नही पाता। समझना तो ज्ञानको ही है, लेकिन इन्द्रियसापेक्ष इनका ज्ञान चल रहा। इन्द्रियद्वारो से चल रहा। जानने वाली इन्द्रियां नही, किन्तु जब यह आवृत है, तो इसके जाननेका उपाय ये इन्द्रिय खिडकियां है। जैसे कोई पुरुष एक हॉलमे खडा है तो बाहरकी चीजोको वह खिड़कियोसे ही देख पाता है। देखने वाली खिडकियां नही हैं, देखने वाला तो पुरुष है, मगर वह खिडकियोसे बाहरकी चीजें देख पाता है, पर खुदके शरीरको जो उस भवनमे खडा है पुरुष, क्या वह खिडकियोके द्वारसे देखता है? वहां खिडकियोकी अपेक्षा नही होती। खुद अपने शरीरको देखनेके लिए खिडकियोकी आवश्यकता नही। बाहरकी चीजोको देखनेके लिए खिड़कियोकी आवश्यकता है और जहा खिडकिया ही नही है, भीत ही न हो, भीत ढा दे तो वह पुरुष सर्व तरहसे परपदार्थोंको देख सकता है तो आवरणकी भीत ढह गई प्रभुके, सो प्रभु सर्व ओरसे परपदार्थोको निरखते हैं, और यह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी छद्मस्थ इसका आवरण अभी हटा नही, तो यह परपदार्थोंको तो समझ पाता है इन्द्रिय मन द्वारा लेकिन खुदको समझता है यह इन्द्रिय और मनकी सहायता बिना। यद्यपि खुदको समझनेके लिए भी मनको सहायता हो जाती है, पर यह मन वहां तक सहयोग देता है जहां तक विकल्पकी सूक्ष्मता भी जिन्दा रहती है। बादमे मन काम नही करता। जिस समय यह आत्मा अपने ज्ञानस्वरूपको अनुभव मे लेता है वहा मनका काम नही है। जैसे कोई पहरेदार किसी दर्शनार्थीको राजासे मिलाने

चलता है तो पहरेदार वहां तक तो उसके साथ जाता है जहां तक राजा दिखता नही। पर जहां राजा दिखने लगता वहांसे पहरेदार इशारा भर करता है कि वह बैठे हैं राजा साहब जाओ, और पहरेदार लौटकर अपनी ड्यूटीमे आता है। वह दर्शनार्थी अकेला ही राजाके निकट जाकर मिलता है, ऐसे ही यह मन पहरेदार इस दर्शनार्थी उपयोगको वहां तक ले जाता है जहांसे इस परमात्मस्वरूपको निरखनेका संकेत बनता है, वहांके बाद मानो यह मन कहता है कि अब आप जाइये और इस परमात्मस्वरूपसे मिलिए। यह उपयोग तो मिलने लगता है, स्वानुभूति करता है और यह मन वहांसे निवृत्त हो जाता है। तो मिलनमें क्या मिला, किससे मिला, कौन मिला ? यह ज्ञानघन परमात्मस्वरूप अनुभव भी किसका हुआ ? इस ज्ञानघनका। ज्ञान ही ज्ञान, ठोस ज्ञान ही ज्ञान ज्ञानमे रहा ऐसा वहां अनुभवमे आया।

(५७) **पौरुषके कर्तव्यका स्मरण**—हम आप लोगोके लिए अभी कितना चलना है, कितना पौरुष करना है सो समझिये। और वह पौरुष है ज्ञानका। अन्य जो कुछ भी साधन बताया गया है, लोगोने कहा है प्राणायाम बनाया, योगसाधन या अन्य बातें यह एक मन पहरेदारको प्रसन्न करनेके लिए है। इस ज्ञानघन परमात्मस्वरूपके दर्शन करनेमे यह क्रिया समर्थ नही है। भला पहरेदारको प्रसन्न करना भी तो कभी आवश्यक होता है। इतनी ही बात उन बाहरी साधनोमें होती है। इतना प्रयत्न होनेपर भी अगर मनमे वह कला नही है तो दर्शन करानेमे समर्थ नही है और कला है तो दर्शन करा सकती है। वह कला आती है ज्ञानकी सुगंधिसे। तो हर स्थितियोमें भी ज्ञानकी ही मुख्यता रहे। ज्ञान द्वारा ज्ञानमे, ज्ञान के लिए ज्ञानको ही इस ज्ञानने जाना यह स्थिति है स्वानुभवकी। कहां जाना ? ज्ञानमे। घर में, देहमे, आधार वहां ज्ञान ही है। अन्य आधार क्या मतलब ? सबका वहां अत्यन्ताभाव है। किसी भी आधारभूत बातका यहां सम्बध ही नही है। ज्ञान है, स्वय है। स्वयं स्वयमे है। कहां स्वानुभूति की ? ज्ञानमें। और जाना किसको ? इस ज्ञानको ही। और जाना किसने ? इस ज्ञानने ही। और क्यो जाना ? इस ज्ञानके लिए। उसका और कोई प्रयोजन नही। बस यह जानना जानना ही बना रहे, इसके लिए ही स्वानुभूति है। इस प्रकार जहा यह अभेद षट्कारकपना देखकर परखा जाता है तो स्वानुभूतिका लक्षण विदित हुआ, लेकिन स्वानुभूतिमे यह षट्कारकता नही पडी हुई है। यहां ही हम समझते हैं। वहां तो एक अभेद अनुभूति है। अपनेको निरखना है।

(५८) **ज्ञानघन अन्तस्तत्त्वकी सुध बिना संसारभ्रमण**—अपने आपमे अपनेको ज्ञान-घन, ज्ञान ज्ञानसे ही रचा हुआ यह आत्मा है। रचने वाला कोई नही, अकृत्रिम है, अनादि है, फिर भी क्या है वहां ? किससे रचा हुआ ? अनादि सही, समझना तो होगा। उसमे

ठोस चीज क्या है ? वह है ज्ञानस्वरूप, जानना। कितना विलक्षण ज्ञानतत्त्व है कि जिस जाननको पकडे कौन ? कैसा एक अद्भुत पदार्थ है यह आत्मा कि जो निरन्तर जाननस्वभाव रखता है और जाननकी वृत्ति करता है, इसी कारण यह आत्मा समस्त पदार्थोंका सम्राट है, है यह खुद अद्भुत विभव सम्पन्न, किन्तु इस सम्पन्नताकी सुध नही है इसलिए बाहर बाहर डोलना पडता है। बाहरी पदार्थोंमे उसको अनुग्रह विग्रह करना पड़ता है। अनुभव करना होगा कि मैं ज्ञानघन हू। मेरे स्वरूपमे अपूर्णता नही। अधूरापन होवे तब तो कुछ आवश्यक है, यहां तो अधूरापन है ही नही। सबसे निराला ज्ञानसे घन। इसको अब क्या आवश्यकता है कुछ भी बातकी ? ऐसा यह परिपूर्ण मैं ज्ञानतत्त्व हूं, यह बोध कि वहां कृतार्थता प्रकट होती ही है। समस्त अर्थ कर लिया गया, समस्त प्रयोजन सिद्ध कर लिए गए ऐसी स्थिति होती है। मैं क्या हू, इसकी समझपर सारा भविष्य है। एक उक्ति अन्य दार्शनिकोंके यहां प्रसिद्ध है कि यहां ब्रह्म एक है, लेकिन जहां यह भाव हुआ—'एकोहंबहुस्यामि' याने मैं एक हूं लेकिन बहुत हो जाऊं, ऐसी जहां वासना जगी कि यह बहुत बन गया, अनेक जीव बन गया। जिसने जो बात सोची उसे मूलतः मिथ्या नही कह सकते, पर कुछ हेर फेर हो जानेसे बात कहींकी कहीं प्रसिद्ध हो गई। यह भी बात सही है। सभी लोग अपनी-अपनी देखें, मैं अद्वैत हू, अकेला हू, एक हूँ। स्वभावको निरखें—मैं एक हूं, फिर यह बहुत क्यो बन रहा है ? यह बहुत रूप विकल्प करता है तो बहुत बनता है, अपनेको एकरूप अनुभव नही कर पाता सो 'बहु स्यामि बहु स्यामि' इसकी वृत्ति चलती है। तो अपने मूल एकत्वको पहिचानें तो ये सारी विषम सृष्टियां समाप्त हो, चारों ओरके दुःख समाप्त हों। वह एकत्व क्या है ? अपने को ज्ञानघन अनुभव करनेमे पा लेना। जो वजनदार हो, ठोस हो वह हिलता डुलता नही, उसमे अस्थिरता नही होती है। लोहेका गोला जहां है तहां पड़ा है, यह तो है एक पौद्गलिक वजनकी बात, लेकिन जहां भावका वजन आ जाय, मैं ज्ञानघन हू, ज्ञानज्ञानसे परिपूर्ण हू, ऐसा ज्ञानघनपना उपयोगमे हो तो यह भी स्थिर रहेगा, चलायमान न होगा जो भी चलायमान हो रहा है जीव वह ज्ञानघनके अनुभव बिना हो रहा है।

(५६) ज्ञानघनकी दृष्टिमें ज्ञानानुभूतिका अभ्युदय—मैं ज्ञानमात्र हू, ज्ञानघन हूं, ज्ञान ज्ञान ही हू, ज्ञानसिवाय कुछ नही हू। निरन्तर यह भावना चले तो उसका फल यह है कि यह मात्र ज्ञान परिणमन ज्ञान परिणमन ही करता रहेगा। जैसी दृष्टि करे, जैसा अन्दरमे भाव बनाये वैसा ही व्यवहार चलता है। एक सेठका एक बाबूके साथ कोई मुकदमा लग गया। कई पेशियां हो गई। जाना पड़ता था रेलगाडीसे ३-४ स्टेशन दूर। तो वह बाबू परेशान हो गया तो उसने एक दिन एक उपाय रचा कि जो तारीख दी थी जिस पर फैसला सुनाना था

उस दिन गाडीके समयसे पहले एक तांगे वालेसे मिल आया और उसे रुपया-दो रुपया देकर समझा दिया कि देखो अमुक सेठ यहाँ आवगा, उससे पैसे ठहराना नही, जो दे सो लेकर अपने तांगेमें बैठा लाना। उससे यो कहना कि सेठ जी आज तुम्हें क्या हो गया है ? आज तुम्हारी तबियत कुछ खराब जैसी दिखती है, तुम्हारा चेहरा गिरा हुआ है.... यही बात बाबू जी ने कुलीसे कह दी और यही बात टिकट बांटने वालेसे भी कह दी। जब सेठ स्टेशनपर पहुंचा तो वहाँ सबसे पहले तांगे वाला मिला, उसने सेठको अपने तांगेमे बठाया और सेठ जी से उसी तरह कह दिया जिस तरह बाबू जी ने कहनेको कहा था, कुलीने भी वही बात कही, टिकट बांटने वाले ने भी वही बात कही। जब सभीके मुखसे सेठने यही बात सुनी तो सेठने अपने ऐसे भाव बना लिए कि वह बीमार हो गया और वहीसे घर वापिस लौट आया। उस दिन की तारीखमें न पहुंचनेसे सेठ मुकदमा हार गया और बाबूजी का काम बन गया। तो अपने आपके भीतर अपनेको जिस तरहका देखा उस तरहके व्यवहारकी प्रेरणा मिलती है। अन्य बहु रूपमें देखनेसे तो लाभ है नही। एक अपनेको ज्ञानघन रूपमें परखनेसे लाभ मिलता है। ऐसा अनुभव हो कि मैं ज्ञानघन हूं। सर्वत्र ज्ञान ज्ञानसे ही रचा हुआ हूं ज्ञानघन। मेरा न परलोक न इहलोक, न वैभव, न कुटुम्ब, न संग, न परिग्रह। मेरा सर्वस्व यह ज्ञान भाव ही है, ऐसा अनुभव करने वाला पुरुष कृतार्थ हो जाता है और मुक्तिका पथिक बनता है।

(६०) जिज्ञासा और आनन्देच्छा होनेपर भी पूर्ति न होनेका कारण—जगतके सभी जीवोंको, हम आपको दो प्रकारकी वाञ्छायें मुख्यतया जगती हैं। एक तो ज्ञान खूब हो, पूरा हो और दूसरा आनन्द मिले। इन दोनोमे से मुख्य है आनन्द। फिर भी करीब-करीब समानतासे दो बातें जीवोंमें प्रकट होती हैं—(१) ज्ञान खूब हो, (२) आनंद खूब हो। बच्चेसे लेकर वृद्ध तक कभी कोई नई चीज सामनेसे गुजर रही हो तो उसके सम्बधमें जाने बिना चैन नहीं पड़ती कि क्या है ? जाननेकी इच्छा होती है और आनन्द पानेकी इच्छा होती है मगर न सब जान पाते न आनन्द प्राप्त कर पाते, उसका कारण क्या है और कैसे यह बात प्रकट होती है, इस बातका समझना कितना आवश्यक है कि आप अनुभव कर रहे होंगे कि जब ये दो इच्छायें पायी जाती हैं तो इन दो बातोंकी पूर्ति होना आवश्यक तो है। हाँ अब विचार करें कि क्यों नहीं कि ये पूर्ण हो पाते ? हम बाह्य चीजोंमें अपना उपयोग लगाते हैं, राग करते हैं, मोह रखते हैं तो हमारे ज्ञानकी सीमा बन जाती है और यह ज्ञान द्वारा प्रकट नहीं हो पाता। बाहर उपयोग लगानेसे, राग करनेसे, लगाव रखनेसे ज्ञानका अभ्यास बन जाता है। उसको ही जानें, इसलिए ज्ञानकी पूर्णता नहीं होती। अगर बाहरी पदार्थोंमें उपयोग न फंसायें, मोह रागद्वेष न करें और एक ज्ञानघन ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही

उपयोगको जोड़ा जाय तो यहाँसे ऐसा प्रताप प्रकट होता है कि विवश होकर जगतके सब पदार्थोंको ज्ञानमें आना पडता है। तो ज्ञानको जो पूर्णता नही होती उसका कारण यह है कि हम बाहरी बातोंमें ज्ञानको, उपयोगको जोड करके हम उसकी सीमा बनाये रहते हैं—दूसरी चीज— आनन्द क्यो नही मिल पाता ? उसका कारण है कि आनन्द जहाँ नही है वहाँ हम बल लगाते हैं, बाह्य वस्तुमे हमारा आनन्द नही, फिर भी हम बाह्य वस्तुमे उपयोग जोडते हैं आनन्दकी बात रखकर। जहाँ जो चीज नही उसके अवलम्बनसे वह कैसे प्रकट होगा ? जैसे कोई कुछ भी प्रयोग करे, पर बालूसे तेल नही निकाला जा सकता, इसी प्रकार बाह्य वस्तुमे आनन्द नही और दूसरे जीवोंमे आनन्द तो है, पर वह आनन्द उनका उनके लिए है।

(६१) एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें प्रभाव न जानेका कारण वस्तुसीमा— वस्तुकी एक सीमा होती है कि कोई पदार्थ अपनी सीमाको तोड नही सकता तब ही तो उनकी सत्ता है। जगतमे इतने पदार्थ दिखते हैं ये अब तक हैं क्यो ? ये चले आये इनकी सत्ता क्यो बनी चली आयी कि ये सब अपनी ईमानदारीपर रहते हैं। कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थमे अपनी शक्ति, परिणति, अपने गुण, अपना भाव, अपना प्रभाव, कुछ भी नही दे पाते। यद्यपि ऐसा लगता है कि प्रभाव तो पडता है एकका दूसरेपर और खासकर विज्ञानवादमे तो यह पद-पदपर बात दिखती, अमुक चीजका सम्बंध किया तो दूसरेपर यह असर हुआ। वस्तुत देखा जाय तो किसी पदार्थका दूसरे पदार्थपर असर नही पड़ता, जो असर हुआ है वह जिसमे परिणति हुई है उसका ही वह असर है, पर उस असरमें निमित्त कारण दूसरा है। उसको जल्दीकी भाषामे ऐसा बोल दो तो कोई हानि नही कि इस पदार्थका इसपर असर पडा है। पर जब विश्लेषण करेंगे तो किसी पदार्थका प्रभाव किसी दूसरेपर नही पड़ता। इस बातको मोटे रूपसे समझनेके लिए एक बहुत मोटा दृष्टांत ले लो। बात सब जगह घटित हो जायगी। जैसे किसी देहातीको न्यायालयमे जाना पडे, कभी गया न था। सुन रखा था कि कचहरी बडी कठिन चीज होती है। वहाँ एक जज होता है, लोग काँप जाते हे। जज न जाने क्या-क्या पूछता है। सो वह देहाती कचहरीमे पहुँचा तो डरके मारे उसने अपनी धोती बिगाड़ ली। तो बताओ जजका वह प्रभाव है क्या ? अरे वह प्रभाव जजका नही। उस देहातीने स्वयं ही अपने अन्दर उस प्रकारका भाव बनाया, उस प्रकारका अपनेमे असर बनाया, वह प्रभाव यदि जजने डाला होता तो वहाँ रहने वाले वकील अथवा जजके मित्र, लोगोपर भी उस प्रकारका असर होना चाहिए था, पर ऐसी बात तो वहाँ नही देखी जाती। तो ऐसी ही बात सर्वत्र समझो कि दो पदार्थोंका जहाँ सम्पर्क हुआ और वहाँ एक पदार्थकी शक्ल-सूरत, प्रभाव-असर बदल जाय तो वह असर उसका ही असर है। उसमे निमित्त होता है दूसरा।

तो ऐसे ही एक माध्यमसे सारी बात समझते हुए कि मैं दूसरेको सुखी नही करता। दूसरा सुखी होता है वह अपने प्रभावसे उसमें मैं निमित्त होता हूं। मुझको कोई सुखी नही करता। मैं सुखी होता हू अपने आपके परिणामसे। तो जहाँ सत्य बोध होता है कि मेरा आनन्द आनन्दनिधान मेरे ही सहज स्वभावके आलम्बनसे प्रकट होता है वहाँ निजतत्त्वके आश्रयसे आनन्द प्रकट होता है।

(६२) प्रत्येक परिस्थितिमें आत्मसाधनाकी आवश्यकता—

भैया! बाह्य वस्तुके आश्रयसे आनन्द नही होता। कैसे आये आनन्द? बाह्य पदार्थों पर ही दृष्टि रखते आये और दुःखी होते आये। भैया! माना कि लोगोमे रहते हैं, समूहमे रहते हैं, काम अनेक करने पड़ते है, यशके माफिक, पोजीशनके माफिक व्यवहार रखना पडता है, गृह-व्यवस्था ऐसी ही है. तो ये सारे काम करें तो सही, किन्तु अपनेपर दया करके एक-आध घटा अथवा एक घंटा समय अपने हितके लिए तो रखें। जहाँ अपनेको बडा नम्र बनाना, सब जीवोको क्षमा करना, अपने आपको सरल बनाना, अपने आपको अपने आपके अभिमुख करना, किसी भी बाह्य पदार्थमे लालच न जगे। अपने भीतर ज्ञानप्रकाशको समझना, इन बातोके लिए कुछ समय भी न दें और बाहर-बाहरकी बातोमे ही लगे रहे तो आत्माकी वेमुखीमे लाभ पायेंगे कुछ नही, केवल क्लेश क्लेशकी सतान चलती रहेगी। तो आनन्द पानेके लिए यह आवश्यक है कि सत्य बोध हो और आनन्दस्वरूप जो निज आत्माराम है उसका आलम्बन हो। देखिये चाहते है ना दो बातें—ज्ञान पूर्ण हो और आनन्द भी पूर्ण हो। तो कितनी सहूलियत है कि यह आत्मा स्वयं ज्ञान और आनन्दसे ही रचा हुआ है, जिस बातको हम चाहते हैं उससे ही रचा हुआ आत्मा ही, स्वरूप ही है, दूसरा कुछ स्वरूप ही नही आत्माका। तभी तो कोई लोग कहते हैं कि आनन्द 'ब्रह्मणोरूप'। तो कोई कहते है कि जो ज्ञान है वह ही ब्रह्मका स्वरूप है। ज्ञान और आनन्द हम चाहते हैं और यह बड़ी सुविधाकी बात है कि हम आप सब ज्ञानमय हैं, आनन्दमय है, पर आश्चर्यकी बात यह है कि ज्ञानमय होकर भी हम इस ज्ञानस्वरूपको नही जान पा रहे, आनन्दमय होकर भी हम आनन्द पानेके लिए बाहरी बातोंकी आशा करते फिरें। थोड़ा समय अपने जीवनमे सबसे निवृत्त होकर आधा घंटेके लिए ऐसा उपेक्षित होकर जिसे यो कहो कि उपचारसे मानो मुनि हो गए। कुछ नहीं सोचना, कोई लगाव नही। देहपर पहने हुए कपड़ोंका भी ध्यान नही, देहका भी ध्यान नही होता। भीतरी एक ज्ञानप्रकाशको समझनेके लिए ही लिया गया हो ऐसी दृष्टि थोडी जरूर बनानी चाहिए रोज, तो कुछ अपने आपके स्वरूपका प्रवर्तन होगा। और इस प्रकार इन्द्रियमुखोमे ही प्रेम रहा तो इस आत्माकी भलाई नहीं है।

(६३) निरंतर मरणकी स्थितिमे निरंतर समाधिकी आवश्यकता—भैया ! आयु निकल रही है, जीवन चला तो कौन बूढ़ा नही हुआ ? बूढ़ा होनेपर जब देह शिथिल हो जाता, कुछ क्रिया नही कर पाते तो वहाँ एक भीतरमे बहुत कषाय जगती रहती है, क्या उसका कष्ट नहीं होता है ? ऐसे भावी कष्टसे बचनेके लिए उपाय क्या है सो बताओ ? यही के कष्टको बात कह रहे है । यदि ज्ञानबल है, कषाय नही जगी, उसका उपाय पहलेसे कर लिया होता कि वस्तुका स्वतत्र सत्य स्वरूपका अभ्यास बनाया होता तो वहाँ समतासे रह सकते थे । हम आपका समताका घात हो रहा है यहां यह मरण क्षण-क्षण हो रहा है, इसे कहते है भाव मरण । प्रतिक्षण आयुके निषेक खिर रहे है यह हो रहा आवीचि मरण । जहाँ शरीरसे भी विदा हो गए वह है भवमरण और जहाँ अहर्निश क्षण-क्षण रागद्वेष मोहमे उप-योग चल रहा हो वहाँ आत्माका जो विशुद्ध चैतन्य प्राण है उसका जो घात चल रहा है वह कहलाता है भावमरण । और आवीचिमरणकी अपेक्षा भी देखें तो जो आयुके क्षण गए वे मरण ही तो कहलाये । उतनी आयु पुनः तो नही आ सकती । तो ऐसा तो मामला है । सामनेकी बातें हैं तिसपर भी इन्द्रियसुखमे रति रहे और आत्माकी सुध न करें तो यह अपने लिए कितनी अहितकर बात है । जगतमे जो कुछ दिखता है वह सब विनाशीक है । उसके लगावसे मेरेको लाभ न मिलेगा और मेरेमे ऐसा जो गुजर रहा है—देह होना, पुरुष होना वह भी विनाशीक है । उनको बनाये रहनेमे भी लाभ नही है । एक अविनाशी जो आत्माका सहज स्वरूप है, सत्स्वरूप है उस अविनाशी स्वरूपकी दृष्टि जगे तो मैं अमर होऊँगा । अमर तो है ही यह जीव, पर अमरत्वकी सुध नही है इसलिए मरणका क्लेश है । जहाँ अपने अविनाशी स्वरूपको जाना वहाँ विश्वास हो गया कि मैं अमर हू ।

(६४) अमृत ज्ञानतत्त्वकी सुधमे मरणकी निरापदता—कोई किसी बड़े अफसरका जब तबादला होता है एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमे या कही भी तो उसके लिए कितने साधन सरकार देती है ? एक रेलगाड़ीका डिब्बा, एक मालगाड़ीका भी डिब्बा, चक्की, चूल्हा, गाय, भैस आदिक ले जाय, दसो नौकर सामान रखने वाले, जहा उतरेगा वहा दसो नौकर पहलेसे तैयार हजारोकी संख्यामे जनता, तो ऐसे आफीसरका तबादला होनेमे कौनसी दिक्कत होती है ? बस मोटरसे उतरकर रेलके डिब्बेमे बैठना भर है, किसी प्रकारकी कोई उलझन ही नही है, रिजर्व डिब्बा है, जहां गया उतर गया, क्या दिक्कत आयी ? पहुंच गया । और किसी छोटे क्लर्कका जब तबादला हो तो उसको कितनी दिक्कत ? जहां पहुचेगा वहा अपना सारा सामान किस तरह ले जायगा ? बड़ी मुश्किलमे पहुचता है । उसे ठहरनेको कही जगह नही मिलती, वह जगह ढूंढता फिरता है, अनेक परेशानियां उसके सामने आती हैं जिन्हे आप सब

लोग जानते हैं। ऐसी ही बात समझिये कि किसी ज्ञानी आत्माका जब तबादला होता है याने एक देहको छोडकर दूसरे देहमे जानेकी बात होती है तो तबादलाके समय ज्ञानी जीवको कोई दिक्कत नही होती। कारण कि वह जान रहा है कि मेरा सब कुछ वैभव मेरेसे अभिन्न है। मैं जा रहा हू तो ऐसा सारा वैभव मेरे साथ ही है। पूर्ण वैभव वाला यह मैं यहांसे यहां बैठ गया। दूसरी जगह पहुच गया। जानेमे भी क्या दिक्कत ? एक-दो-तीन समयमे सारा रास्ता पार हो जाता है। जहां पहुचा वहां भी विभव सम्पन्न। तो जो अपने वैभवको निरखता है उसको उसकी बदलके समय कष्ट नही होता और एक अज्ञानी पुरुष तबादलेके समय, मरणके समय कितना संक्लेश करता है ? हाय मुश्किलसे हमने कमाया, घर बनाया, वह छूट रहा है। जो इज्जत पायी, जो ये पार्टीके लोग हैं, मित्रजन है, परिजन हैं ये सब छूट रहे है। जिसकी दृष्टिमे इस तरहकी नाना कल्पनायें होती हो उसे कितना कष्ट है ? तो कष्ट कोई दूसरा नही देता हम आपको। हम ही स्वय कल्पनायें करते हैं और दु.खी होते है, सुखी होते है। तो वह सब अपने आधीन बात है।

(६५) दुःखपूर्ण संसारमें कष्टसहिष्णुतासे ही विजयकी संभावना—यही देख लो—प्राय सभी लोग अपनेको बडा दुःखी अनुभव करते हैं। कोई सोचता है कि मेरेको हजारोका नुक्सान पड गया रोगका, शोकका, वियोगका, अनिष्ट सयोगका। कुछ न कुछ कल्पनायें करके प्रत्येक मनुष्य ऐसा अनुभव करता है कि मेरेको बडा दुःख है, लेकिन दृष्टि पसारकर देखो तो क्या दुःख है ? अपनेसे अधिक दुःखी कितने जीव ससारमे पड़े हुए हैं ? जरा निगाह तो करो ? क्या उनमे जीव ही नही समझते ? कितना उनको कष्ट है ? रोगी है, बोल नही पाते, लकवा लगा है, खानेका भी इन्तजाम नही, औषधिका भी इंतजाम नही, घरके बच्चे भी भूखे रहते हैं, यो कितनी ही प्रकारकी कठिन स्थितियो वाले लोग पाये जाते हैं, जरा उनपर दृष्टि तो दें और अपने आपमे कुछ सन्तोष लावें। मेरेको कोई दुःख नही, दुःखसे घबडाने वालेको दु ख छोड़ेगा नही। कभी भी भगवानसे प्रार्थना करते हुएमे मेरेको दुःख न हो, ऐसी मांग करनेमे सार नहीं। मागनेसे कही दु ख मिटता नही। और, मेरेमे दु ख न हो ऐसी कोई आशा रखे तो दु.ख न हो ऐसा होता नही ससारमे। इसके बजाय ऐसी भावना बनाये कि मेरेको ऐसा ज्ञानबल जगे कि मैं सारे कष्टोको समतासे सह सकू इसमे तो पार पा लेंगे, मगर मेरेको कोई दु ख न आये इसमे पार नही पा सकते। और, पार तो इसमे भी पा सकते, मगर इसके लिए ज्ञानबल चाहिए। मेरेको दुःख ही नही, मेरे स्वरूपमे कष्ट ही नही। कोई यो उल्टा चलना है तो चलता है, उसकी क्रिया है, मेरेको उससे क्या प्रयोजन ? जगतमे किसीकी कुछ भी प्रवृत्ति होती है तो उसका ज्ञाता द्रष्टा रह जाय। इतना अपूर्व बल हो तो दुःख ही नही।

कोई बात कहता है ऐसी स्थितिमें कष्टसहिष्णुताकी बात तो आनी ही चाहिए। कष्ट हर एक पर आयेंगे, जब तक यहांपर सम्बंध बना है तब तक कष्ट सभीपर आयेंगे। परिवारमे जितने लोग हैं इनका वियोग होगा कि न होगा ? खुदका भी वियोग होगा कि न होगा। अवश्यं-भावी है, किसीका पहले होता, किसीका बादमे होता। तो जब वियोग होगा तब यह कष्ट मानेगा कि नही। कष्टकी बात इस लोकमे लोग मानते ही हैं। कौन पुरुष ऐसा है कि जिस पर कष्टकी सम्भावना नही, जिसपर सम्भावना नही वह साधु वास्तवमे अगर विरक्त है, ज्ञानमे लीन है तो उसे कष्ट नही है, बाकी तो इष्टवियोग, अनिष्ट सयोग, शारीरिक वेदना आदि अनेक प्रकारकी आशायें, ये सब कष्ट पद पदपर मंडरा रहे हैं। ऐसी स्थितिमे जब तक हम कष्टसहिष्णु बननेका प्रयास न करें तब तक हम अपने जीवनमे प्रगति ही नही कर सकते।

(६६) सुख दुःखमे समतासे प्रगतिकी संभवता—भैया ! जो दुःख आये सो आये, उसको गहरा नही बनाना है। हो गया दुःख, क्या हुआ, कुछ बाह्य पदार्थकी परिणति ही तो हुई, उसकी उपेक्षा करें और अपना जो लक्ष्य बनाया है जीवनका उसमें आगे बढते जायें जीवनका लक्ष्य क्या ? मानो कुछ पोजीशन बनाया, कीर्ति बनाया, धन वैभव बढ़ाया। ठाठ बाट बढाया, तो इस लक्ष्यसे मिलता क्या ? आत्माको कहां शान्ति मिलती है ? मरणके बाद आत्मा इनमेसे ले क्या जायगा ? जैसे पहले भवोंकी बातें इस भवमे कोई मददगार नही हो रही। इस भवकी भी कोई बात आगे भवमें मददगार न होगी। कोई सोचता होगा कि आगेकी कौन जाने, भव मिलता कि नही मिलता, परलोक है कि नही। तो थोडा भी युक्ति से सोचे कोई कि जो है उस है का समूल नाश हो कैसे सकता ? कोई भी दृष्टान्त न मिलेगा अजीव पदार्थोमे न मिलेगा। कुछ भी है वह तो रहेगा, चाहे किसी शक्लमे रहे, किसी पर्यायमे रहे। जो है उसकी शक्ल मिट कैसे सकती है ? है का न कैसे बन जायगा ? तो अपने आपके बारेमे भी सोचूं कि मैं हूं या नही। हू हूं तो सब बोलते है। मेरा सत्त्व है तब ही तो दुःख सुख सब लगे हुए हैं, तो मेरा जब सत्त्व है, मैं हूं तो फिर मिट कैसे सकूंगा ? इस परिवारको छोडनेपर मैं तो रहूगा कुछ। क्या स्थिति होगी ? उसके लिए मिसाल यह है कि जो वर्तमानमे देह दिखता है वह मिसाल है। परलोकका अभाव नही है। जब बच्चा तुरन्त पैदा होता है तो भले ही इतना प्रयास कोई मां करती है कि अपने स्तनपर बच्चेका मुख लगा ले, लेकिन उसे गुटकना, भीतर ले जाना यह तो नही सिखा पा रही वह मां। क्यो ऐसा कर लेता है वह बच्चा कि पूर्वभवमे भी था, उसे अभ्यास बना हुआ था क्षुधा मेटनेका। वह अभ्यास उस समय काम दे रहा। कही कही जातिस्मरणकी बात सुनी जाती

है । होता है जातिस्मरण, उससे सिद्ध है कि परलोक है । मुख्य बात तो एक यह है कि जो सत् है उसका कभी विध्वंस नही होता । किसी भी वैज्ञानिकसे अथवा विद्वान्से पूछ लो । हो कैसे सकता कि जो है वह कुछ रहे नही । तो जब मेरा सत्त्व है, मुझे सदा रहना है तो जरा अपने भावीकालकी बात विचारें कि मुझे अच्छे ढंगसे रहना चाहिए । इस जीवनमे भी लोग क्या करते कि पहले तो सब कष्ट सह-सहकर जायदाद बना लें, फिर आरामसे खाते हुए रहेगे । इतना पौरुष करते हैं, इतना कष्ट सहते हैं एक थोड़ी सी जिन्दगीमे आरामसे रहनेके लिए ये सब प्रयत्न करने चलते है । तो भला अनन्तकाल तक सुखी शान्त रह सकें इसके लिए भी कोई उद्यम बनानेकी बात मनमे आती कि नही । मोहको ढीला करना पडेगा, राग-द्वेषसे उपेक्षा करनी होगी । अज्ञानसे मुख मोडना होगा और आत्मबोधमे आना होगा नही तो जैसे दुःख भोगते आये वैसे दुःखोकी संतान रहेगी । आत्माका हित हो नही सकता ।

(६७) आध्यात्मिक आन्तरिक उद्यमसे आत्मलाभ—

जो भीतरमें प्रयोग बनायगा उसको लाभ मिलेगा, यह बात किसीसे कहने सुननेकी नहो है । भीतरमे सोचना और अपने आप ही अपनेमें अमल करनेकी बात है । यह सब गुप्त ही बात है । कुछ दिखानेकी बात नही है । जो भीतर अपने ज्ञानबलसे अपना यह बोध कर सका, उसमें रम सका, उसमे तृप्त रह सका उस जीवको शान्ति प्राप्त होगी । उसके लिये संयमसे रहो, इन्द्रियोके वशमें न होवो । इन्द्रियको वशमे रखो । वचनोका संयम, मनका संयम, सबका हित विचारना, किसीको विरोधी न समझना । जब हम अपने अन्तर्व्योहारको सही बनायेगे तो यह ज्ञान भोला सीधा बाबा, कहते है ना भगवानको भोले बाबा, सचमुच भगवान भी भोला है और अपना आत्मस्वरूप भी भोला है । भोला उसे कहते हैं जिसमे टेढ न हो, कपट न हो, सीधा-सादा हो, सरल हो, स्पष्ट हो, ऐसे ही प्रभु हैं, ऐसा ही अपना स्वरूप है, अपने आपमें विराजमान भोले बाबाकी सुध लें और ऐंठ, कपट, मायाजाल, इन सारी बातोंकी आहुति करें और कुछ क्षण तो अपने ज्ञानदेवतासे मिलनेका प्रयास तो बनाया करें । निरन्तर थोड़े क्षण भी प्रयास बना रहेगा तो बाकी क्षणोंमें भी आनन्द रहेगा और अपने आपका उद्धार भी होगा । तो एक निर्णय बनावें कि मेरा कुछ नही है, देह भी मेरा नही, परिवार भी मेरा नही, धन-वैभव भी मेरा नही, मेरा यहाँ कुछ भी नही । मेरा तो केवल एक मेरा आत्मा है । वही प्रिय है, वही ध्यानके योग्य है । वही शरण है, वही अवलम्बन है, इसका यह ही मात्र है । मेरा मेरे सिवाय अन्य कुछ नहीं है । ऐसी एक भावना हो तो समाधिभाव बना । समाधि उसे कहते हैं कि जहाँ आधि शान्त हो जाय । मानसिक क्लेश न रहे, ऐसी स्थिति बने और उसी स्थितिके निरन्तर अभ्यासमे हमारा क्लेश दूर होगा । इसके लिए चाहिए—रोज घंटाभर ज्ञानाभ्यासमे समय लगावें, सुगम मिलें, उनमे पढ़कर

ज्ञानाभ्यास करें, न मिले तो पुस्तकका भी बहुत अच्छा सहारा है। सब समझमे आता है। एक भीतरी भावनासे उस पुस्तकका अध्ययन करें। अध्ययन करनेकी विधि यह है कि जो पढना उसे समझ-समझकर पढना। जो पढ गए उसे फिर दुबारा पढना, तीसरी बार उस ग्रन्थको बद करके जितना स्मरण रहे उतना उस बातको बोल जाय इस ढंगसे स्वाध्याय चले तो कुछ समय बाद आपको ऐसा मालूम होगा कि मैंने ज्ञानार्जन किया और यह पाया और एक शान्तिका मार्ग मिला।

(६८) महान् अजायबघर—यह ससार क्या है, मैं कौन हू और यहाँ मेरा क्या कर्तव्य है। मुझे आगे क्या होना चाहिए ? कुछ इन बातोपर दृष्टि दी जाय तो इस जीवकी भलाईका मार्ग निकलता है। यह संसार क्या है ? जन्म मरण करते हुए जीवोका समुदाय ही यह ससार है। जीव अनेक प्रकारके है—एकेन्द्रिय; दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, नारकी, देव, पशु-पक्षी मनुष्य आदिक अनेक जीवोका समुदाय-यह संसार है, और वे सभी जीव जन्ममरणके दुःखी नाना विकल्पोके संतापसे सक्लेशमे पडे हुए हैं इन जीवोका जो समूह है सो ससार है। यहाँ जो कुछ भी दिखता है इसमे सारका नाम नही है। मेरे आत्माका किसी भी परपदार्थसे कोई हित न होगा। कुछ भी सम्बध बना लें व्यर्थ का सम्बध, मिथ्या सम्बंध। प्रत्येक अणु-अणु स्वतंत्र है, प्रत्येक जीव स्वतंत्र है, सबको अपने अपने कर्मोदयसे सुख दु:ख है। और मान लो जो जीव आपके घरमे पैदा हुए, मानो ये न आये होते, कोई भी जीव आता होता तो उसे भी मानते कि यह मेरा है। तो जीवसे तो कोई नाता नही हैं, और फिर उनसे कोई हितकी आशा नही, भलाईकी आशा नही। यह कोई उनको गाली नही दी जा रही। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है कि कोई भी जीव कोई भी वस्तु अपना गुण, पर्याय, प्रभाव दूसरेको नही दे सकता है। यह वस्तुकी सीमा है। वस्तुस्वरूपकी ही बात कही जा रही है। तो ऐसे इन अनेक पदार्थोके समूहका नाम ससार है। यह तो एक अजायबघर है। लोग अजायबघर देखने टिकट लेकर जाते, समय खोकर जाते। वह अजायबघर आया कहासे ? अरे यहीका जो यह जीवसमूह है इस जीवसमूहमे से कुछ इकट्ठा करके एक जगह रख दिए गए है, कुछ अन्य अन्य देशोसे भी ला लाकर इकट्ठे किए गए है। अजायबघर तो यह देखनेके लिए बनावटी है और जितना बडा यह अजायबघर बनाया इससे असख्यात गुणा ऐसा यह सारा संसार अजायबघर है। जैसे अजायबघरमे भी देखनेभरकी इजाजत मिलती है, छूनेकी इजाजत नही मिलती, इसी प्रकार इस अजायबघर ससारको देखने भरकी इजाजत है, छूनेकी इजाजत नही है, रागद्वेष करनेकी, लगाव बनानेकी इजाजत नही है प्रभुकी। लेकिन प्रभुके आर्डरके खिलाफ जो यहाँ इन वस्तुवोको छुवेगा, लगाव रखेगा,

मोह रखेगा वह गिरफ्तार होगा, कर्मबन्धनमें श्रायगा, उसको बड़ा दण्ड मिलेगा। जन्म मरण से बढकर और दण्ड क्या है जीवको ? तो ससारका ऐसा स्वरूप है।

(६९) **मैं कौन हूं इसकी प्रबल जिज्ञासामें समाधानकी सुगमता**—अब चलो अपनी बात देखो मैं कौन हू, मैं कौन हूं, इस प्रकार अनेक बार प्रश्न कर करके यह स्वयं उत्तर पा लेगा। पहले तो इस जीवपर इतना व्यामोह पडा है कि ऐसा प्रश्न ही नही उठ ना चाहते हैं कि मैं कौन हू। प्रश्न ही अगर कोई उठाये कि मैं कौन हूं तो समझो कि उसे ऐमा करनेका भाव हुआ है। मैं कौन हूं, ऐसा जो प्रश्न करता है, जानता है, ऐसा समझदार पदार्थ हू-मैं। उसकी विशेषता है जाननकी। बाहरके पदार्थका स्वरूप तो एक पिण्ड रूप है। सामने दिखता है, ऐसा आकार है, यह मालूम होता है और अपने आपमे आपका स्वरूप कैसा मालूम होगा कि केवल ज्ञान ज्ञान भाव है, वह ही है मैं आत्मा। जो महज ही अनाकुलता सहित है ऐसा ज्ञानस्वरूप हूँ मैं यह आत्मा। यह इसका एक स्वभाव है। स्वभाव किसीसे उधार नही मिला। स्वभाव पदार्थकी स्वयं जान है। स्वभाव नही तो सत्ता नही, ऐसा ज्ञानस्वभाव होकर भी जो वर्तमानमे हमारी स्थिति हो रही, वह एक बड़ी दयनीय स्थिति है। कहाँ बाहर चित्त रहता है ? किस किसका उपयोग चलता है, किस किसमें चित्त रमा करना है, विकल्प उठना है। व्यर्थकी कल्पनायें जगती हैं और दुखी होते है, यद्यपि यह सब भ्रमवश हो रहा है, पर भ्रम करनेकी भी तो कुछ मलिनता ही तो है।

(७०) **ज्ञानस्वच्छताके तिरोधानसे मलिनताकी प्राकृतिकता**—प्रश्न होता है कि ऐसी मलिनता इस जीवमे क्यों आयी ? भले ही कर्मका सम्बध है, रहा आये। एक बोरेमे गेहूं चने इकट्ठे रहते है तो इससे कहा गेहू चना नही बन जाते। गेहू तो गेहू ही रहता है। कर्म और जीव ये दोनो एक साथ रहते हैं, रहे आये, फिर, जीव अपने स्वभावको तजकर ऐसा बन कैसे गया ? अगर कहो कि भाई गेहू चनेका तो बहुत विषम दृष्टान्त है, अच्छा, तो चलो—दूध पानीका दृष्टान्त लो। दूध और पानी एक साथ आये हैं और स्वादमे भी, जो पीवे भिन्नता मालूम होती है, फिर भी दूधके जो कण हैं, उनमें दूध ही है, पानीके जो कण हैं उनमे पानी ही है। तो वे कहीं एक तो नही हो गए। स्वभाव तो नही बदल गया। यहाँ जीवमे क्यों आफत आयी ? भिन्न है। एक मोटा दृष्टान्त है। अच्छा, तो और चलो, जैसे स्वर्णपाषाण है, मिट्टी है उसमे स्वर्ण है, स्वर्ण मिट्टी ये दोनो एक साथ हैं और उससे स्वर्ण का विकास नही है, विकास करनेसे विकास होता है, हो फिर भी मिली हुई हालतमे भी जो स्वर्णके कण हैं वे तो स्वर्ण ही हैं, वह दूसरा तो नही बन गया, ऐसे ही जीव और कर्म दोनो एक साथ मिले है, मिलें, पर जीव तो एक ही है। वह अन्यरूप कैसे हो गया ? भाई

यह स्वर्ण पाषणका भी दृष्टान्त मोटा है। तो अच्छा और देखो—जैसे दर्पणके सामने कोई लाल पीला पदार्थ आया है, दर्पणमे लाल पीला प्रतिविम्ब पड गया है, दर्पण कैसे बन गया ? उस समय लाल पीला प्रतिविम्ब रूप हो गया। क्या किया वहाँ ? स्वच्छताकी हानि। इसी प्रकार आत्मा और कर्म कर्मविपाक सामने आया और उसकी झांकी हुई इस आत्माके उपयोगमें। उस समय यों समझिये—जैसे ज्ञानमे कोई पदार्थ आता है तो ज्ञान जैसे उस पदार्थ मे प्रतिविम्ब रूप हो जाता है तो ऐसे ही यह कर्मविपाक यह अंधकाररूप है, और वह अधेरा इसपर छा गया है तो यह समझ भी नही पाता कि मेरेमे कर्म आये है, कर्मविपाक झलके है और न समझकर भी प्रभाव इसपर वही होता है कि जैसे स्वच्छताकी हानि होनी चाहिए और चूंकि इसमे विकार करनेकी आदत है तो भीतरमे विकार करनेकी गुंजाइस तो रहती नही, क्योकि कर्मविपाकका अधेरा छाया है। तो यह बाहरके पदार्थोंका उपयोग करने लगता है। यो ही आत्मामें विकारकी विधि होती है। स्वभाव है केवल ज्ञाताद्रष्टा रहनेका और वह स्वभाव कही गया नही। विकार होनेपर भी स्वभाव रहता है, पर वह स्वभाव तिरोभूत है। इसका तिरस्कार भी विलक्षण है। यह तिरोभाव इस प्रकार नही है जैसे कि कभी किसी त्यागीका आहार कराते कमरेमे और कमरेमे रखी हैं बहुतसी गडबड चीजें, तो एक रंगीन चद्दर उसपर ढक दी जाती है, जिससे कि एक शोभा हो जायगी, चीजें दिखेगी नही। तिरोभाव हो गया उन चीजोका, इस तरहका तिरोभाव यहाँ नही है। यहाँ इस तरहका तिरोभाव है। जैसे दर्पणमे प्रतिविम्ब पडनेपर स्वच्छताका तिरोभाव है।

(७१) सहजानन्दमय निजतत्त्वके आश्रयमें कष्टकी अघटना—हम सब स्वरूपतः ज्ञानानन्दके निधान हैं। कोई कमी नही है। कोई कष्ट नही है, किसी प्रकारकी आकुलताका अवकाश ही नही है, अपनेको देखें अपनेमे रमें, किसी प्रकारका क्लेश ही नही है, लेकिन अपनी ईमानदारीसे जब यह जीव हट जाता है और जिससे कुछ लेनदेन नही, सम्बंध भी नही उसके विचारमें आ जाता है तो इसको कष्ट होना प्राकृतिक ही है। अपनेको देखो—मैं ज्ञानस्वरूप हू। कर्मोपाधिके सन्निधानमे उसकी आदत संसारमे रुलनेकी, विकल्प करनेकी हो रही है। मैं अपने स्वभावको परखू, स्वभावमे आलम्बन लूं तो इन सारे विकारोको मैं छोड़ सकता हूं। देखो काम दो है—चाहे किसी जीवको अपना परिवार कुटुम्ब पुत्र मित्र मान मानकर विकल्प कर करके कर्मबन्ध करके ससारमें रुल ले या समग्र परवस्तुओसे मोह हटा-हटाकर अपने ज्ञान प्रकाशमे आकर ज्ञानस्वरूपमे तृप्त होकर मोक्षमार्ग बनाकर मुक्त हो लें। तीसरी बात तो कुछ होती नही। अब इनमे जो बात पसंद हो, ससारका रुलना अच्छा लगे तो उसका भी उपाय सही सामने हैं, मोह करें, दुःखी हो, जन्म मरण करें, पेड पौधे बनें, जिस चाहे हालमे हो उस

का भी उपाय बिल्कुल पास है, कोई अधिक खोजनेकी जरूरत नही और मुक्त होना चाहते हो तो आत्माका ज्ञान करो, सबसे मोह हटाओ, बडी दृढता पूर्वक सत्य निर्णयके साथ मेरा मात्र मैं हू, मेरा अन्य कुछ नही है। अपने ज्ञान प्रकाशमे आयें, ज्ञानस्वरूपमे तृप्त हो और भावना रखे मुक्ति मिलें।

(७२) अज्ञानियोकी कष्टप्रियता—मुक्तिकी बात होनहार भव्य जीवोको मिलती है। दिखता भी है संसारमे कि प्रायः मनुष्य धनसंचयकी ओर, कीर्तिसंचयकी ओर दौड रहे हैं। प्राय सभी मनुष्य ऐसे पाये जाते है। बिरले ही मनुष्य हैं ऐसे कि जो धनकी परवाह न रखें, बाहरके समागममे चाह न जगे, अपने भावको पवित्र बनानेको ही भावना रहती हो। होता क्या है कि यह बिरला पुरुष इन विषय साधनोकी ओर दौड लगाने वाले श्रीमानोको पागल दिखे, पर वह बिरला पुरुष भी इन मोहियोको पागल समझता है। अब यह बिरला पुरुष अनेकोके द्वारा पागलके रूपमे देखा जानेसे वह अनेक विकल्प करे और उन ही जैसा बन जाय वह भी ज्ञानसे हटकर अज्ञानमे आ जाय ऐसा तो होना युक्त नही है। जिसका होनहार अच्छा है वह दूसरेके किसी भी प्रकार कहे जाने पर भी अपने ज्ञान विवेक को नही छोडता। साथी यहा किसी का कोई नही है, केवल एक अपना भाव ही साथी है। कुछ लोग यहाँ साथी बन रहे हैं तो वे आपके पुण्योदयका निमित्त पाकर बन रहे हैं। पुण्य आपको मिला कैसे ? कुछ भाव सही बनाया तो वर्तमानमे कुछ लोग पूछने वाले हो रहे है तो उसका आधार है आपकी सद्भावना। ऐसा कही नही देखा जाता कि कोई अन्याय अत्याचार करने पर उतारू हो और उसका लोग साथ निभाते हो। सब अपने भावोका फल है। जिसपर जो बीतता है उसका कारण है स्वयका भाव। सोचता है अपने लिए कि क्या करें कि जिससे मेरा हित होगा। ये बाहरी पदार्थ रमनेके योग्य नही, जिन्दगीमे अनेक धोखे होते हैं, उन चोट और धोखोसे सावधानी तो आ जानी चाहिए, लेकिन नही आ पाती तो इसमें महान मिथ्यात्व ही कारण समझिये। जैसे किसी बुड्ढेको उसके घरके नाती पोते सतायें, कही हाथ झकझोरें, कही सिर पर चढें, कही मूँछ पटायें, तो वह बूढा बडा हैरान होकर रोने लगता है। वहाँ कोई सन्यासी आया, पूछा—भाई क्यो दुःखी हो रहे हो ? तो वह बूढा बोला—क्या बतायें संन्यासी जी, हमारे ये नाती, पोते वगैरह हमें बहुत हैरान करते है। तो वह संन्यासी बोला—क्या मैं आपका दुःख मेट दू ? -हा हा, आपकी बडी कृपा होगी। वह बूढा तो जानता था कि संन्यासी जी कोई ऐसा मत्र पढ देंगे कि जिससे ये नाती-पोते सब हमारी आज्ञामे, हमारी हू हजूरीमे रहने लगेंगे। पर सन्यासी बोला—अच्छा तुम इन नाती पोतोका साथ छोड दो, चलो हमारे साथ चलो। तो वह बूढा बोला—अरे सन्यासी

जी तुम क्या कह रहे ? हम नही जाते तुम्हारे साथ । ये बच्चे चाहे मारें पीटें, फिर भी ये हमारे नाती पोते ही रहेगे, हम इनके बाबा ही रहेगे । तुम कौन बीचमे दलाली करने आये । हमे ये चाहे मारें, पीटें, हैरान करें, कुछ भी करें, पर हम इन्हें छोडकर नही जा सकते । तो देखिये—जिस मोहके कारण हैरान होते रहते, उसे छोडना भी नही चाहते । जैसे बहुत-बहुत दु:खी होनेपर भी भीतरका मोह नही निकलता, दु:खी होना पडता । ऐसे ही इस जीवनमे किसको दूसरे पदार्थके निमित्तसे सकट नही आता ? सभीपर संकट आते, पर उन्हें ज्ञानी पुरुष सकट ही नही मानते ।

(७३) धार्मिक वातावरणकी प्रयोजकता—घरमे रहने वाले दो चार जीवोसे सपर्क बनाकर, उनमे आशक्त होकर अगर अनाकुलता चाहे तो यह बात असम्भव है । जैसे सूईके छिद्रमे ऊँटका प्रवेश होना असम्भव है ऐसे ही परके सम्पर्कसे अनाकुलता प्राप्त करना असभव है । हम कुछ साधना भी न करना चाहे और कुछ धर्मके ख्यालसे उसमे अपना समय भी लगाना चाहे तो यह बात एक मझधार जैसी बात हो गई । हम किसका स्वाद नही ले पाये ? धर्म का । धर्मका स्वाद लेना है तो कोई क्षण तो चित्तमे आना ही चाहिए कि मेरा किसीसे कोई सबध नही । मैं एक अकेला हूँ, ज्ञानमात्र हू, ऐसा निहारनेका कुछ चिन्तन तो करना चाहिए । मिलेगी मुक्ति, कटेंगे सकट, पर कुछ साधना तो बनाना चाहिए । साधना तो करें नही और चाहे मुक्ति, तो यह तो एक बच्चो जैसी हठ है । बच्चे अज्ञानी ही तो कहलाते हैं । दार्शनिक शास्त्रमे बताया है कि जो जिस विषयमे ज्ञान नही रखता वह उस विषयमे बालक कहलाता है । कोई बालक जलमे तैरना सीखने गया । वह डूबने लगा तो घबड़ाकर किसी तरह निकला और मनमे तो था कि मैं तैर लू मगर वहाँ बडे कष्ट आये । पानी मुखमे भर आया, किसी तरह निकला, लेकिन हठ उसकी यह कि मुझे तो तैरना सीखना है । वह रोने लगा । माँ पूछती है—बेटा क्यो रोते हो ?··· माँ मुझे तैरना सिखा दो । ···अच्छा, चलो तालाबमे तुम्हे तैरना सिखा दें ।···अरी माँ ऐसा करो कि मुझे तालाबमें तैरना न पडे और तैरना आ जाय, ऐसे ही यहाँ अज्ञानी जन ऐसी हठ करते कि मुझे साधना कुछ न करनी पडे, मोहको रंच भी ढीला न करना पड़े और परमात्मसुख, निराकुलताकी प्राप्ति हो जाय, तो उनकी यह बात कैसे सम्भव हो सकती है ? कुछ करनी होगी धर्मसाधना, अपने सारे परिवारको एक धर्मके रगमे रंग देना बहुत आवश्यक है । कोई घरमे रहने वाला पुरुष सोचता हो कि मुझे तो ज्ञानप्रकाश मिल गया है, मैं तो अपना उद्धार कर लूगा, मेरेको क्या बाधा ? तो भाई घरमे रहकर अगर स्त्री पुत्रादिकपर भी वह धर्मका रंग न चढ़ेगा तो काम न चलेगा । तो आप अपने घरको धार्मिक बनायें । दृष्टि दीजिए, ऐसा काम बनावें कि जिससे इस ससारसे

मुक्ति मिले।

(७४) अपनेको नियंत्रित कर निर्बाध होनेका अनुरोध—यह श्रेष्ठ मनुष्यभव पाया है तो यहाँ स्वच्छन्द होकर जो मन चाहता है उसके अनुकूल प्रवृत्ति नही करना है, बल्कि इस मनको अपने आधीन करना है। जो मनमे आये वह नही करना है किन्तु हम जैसा चाहे वैसा मनको करना है। ये इन्द्रियाँ विषयोमे प्रवृत्ति करती है, ये आँखें जिसे देखना चाहती उसे मैं नही देखना चाहता, ये कान जो बात सुनना चाहते उसे मैं नही सुनना चाहता, यह जिह्वा जिसका भक्षण करना चाहती उसे मैं नहीं करना चाहता····, बल्कि जैसा मैं चाहूँ वैसा इन इन्द्रियोंको करना होगा यही बात सब इन्द्रियोके विषयमे है। ऐसा इन्द्रियपर मनपर संयम हो, इतना बल हो तब तो कुछ आशा रखें कि हम धर्म मार्गमे आ सकते है, चल सकते हैं, लेकिन ऐसा साहस जो खो दे, दिन भर भी खाता रहनेसे न अघाय और रातको खाना पडे ऐसा असंयमी जीव धर्ममार्गमे क्या लग सकता है? कोई भी साधारण व्रत ले और कोई मौका पड़े ऐसा कि थोडी देरको व्रत टूटता है तो टूट जाने दे फिर व्रत पालेंगे, ऐसा कोई सोचे तो वह पुरुष व्रत पालनेके लायक नही रहता। साधारण सी भी बात हो और लोग समझायें यह तो मामूली बात है। किसीने नियम लिया कि मैं आधे घटे इस कमरेमे ही बैठूगा और माना १० ही मिनट बाद कोई आ गया बात करनेको। बाहरसे दरवाजेपर खड़ा ही बात करता है या कोई बडा आदमी आ गया, उस समय यह सोचें कि जरा बाहर निकल लूँ उसमे क्या हर्ज होता, फिर अन्दर आ जाऊँगा। अरे जो सकल्प किया, जो नियम किया उसके खिलाफ जरा भी चले तो यही आदत बन जाती है असंयत अनकन्ट्रोल्ड बननेकी, अतः दृढता होना कि कुछ भी कहे लोग तो भी हमें नही उठना है। कितना संयत करना है इस जीवको अपने आपके स्वरूप बोधमें, इसका अनुमान कर लीजिए। क्या करना है? आत्माको जानो, आत्मामे रमो? भ्रम हटाओ। दो काम एक साथ न होगे कि भ्रम और मोह भी करते चले जावें और अपने को पवित्र अथवा धर्मात्मा भी बना लें। दो काम एक साथ नही हो सकते। विवेक बनावें कि मेरे आत्माका लाभ किसमे है। जरा अपना स्वभाव तो देखो, सब कुछ आसानीसे छूट जायगा। जब तक बड़े स्वादकी चीज न आयें तब तक साधारण भोजनकी उमग रहती है। बढिया स्वाद आये तो घटियाको कौन पूछता है? ऐसे ही अगर आत्मीय आनन्द मिल जाय, आत्मवैभवके दर्शन हो जावें तो इन विषयोको कौन चाहे? आत्मवैभवके दर्शन करें और सच्चा बड़प्पन प्राप्त करें।

(७५) कष्टसहिष्णुता व तपश्चरणमे आत्ममहिमाकी प्रगति—वास्तविक यश बनने का प्रयास करते रहें, आत्ममहिमाके उद्यमके बहुत कष्ट आयेंगे, बहुत उपसर्ग आयेंगे उन्हें

समतासे सहन करें। तो भाई जो बडा बना है वह बहुत बहुत कष्टोको समतासे सहन कर, विचलित न होकर अपने लक्ष्यमे बढे चले जानेसे ही महान् बन सका। वैसे लोकमे कहते हैं ना, बडा नामका एक पकवान होता है जो कि उडदसे बनता है। तो बड़ा बननेकी भी देखो कैसी प्रक्रिया होती है? किसका बडा बना....उडदका। खेतमे उड़द था, खेतमे था, लहलहा रहा था, अपने सही पोषाकमे था। पहले उन्हें काटा गया और फिर बैलोंके पैरोसे दबोचा गया याने उसको दांय की गई। तो पहला आक्रमण तो यह हुआ कि बैलोके पैरसे दबोचा गया। वहांसे निकला तो चकियाके बीचमे दला गया। उसके दो टुकड़े हो गए। देखिये उड़द पर कितने संकट आये तब वह बडा बना। यहां यह देखना है। दूसरा आक्रमण यह हुआ। तीसरे आक्रमणमें उडदकी दालको शामको पानीमे भिगो दिया, रातभर पानीमे भीगे रहे। रातभर कोई मनुष्य इस तरह भीग सकता है क्या? रातभर भिगोया गया यह हुआ तीसरा आक्रमण, अब चौथे आक्रमणमे क्या हुआ कि जैसे ही सुबह हुई कि उस उडदको त्वचाको हाथोसे रगड-रगडकर छुटाया गया याने छिलका निकाला गया। छिलका अलग हो जानेपर सफेद उडद रह गया। ५वें आक्रमणमे उसे सिल-बट्टेपर पीसा गया। इतनेपर भी सन्तोष न हुआ तो छठे आक्रमणमें उसमें धनिया, मिर्च डाल दिया, खूब भुरक दिया गया, ७वें आक्रमणमे उसे खूब अच्छी प्रकार फेंटा गया। ८वें आक्रमणमे उसकी शक्ल बिगड दी गई। ९वें आक्रमणमे उसे दबोच-दबोच करके एक प्रतर गोल सा बनाया गया। १०वें आक्रमणमे उसे तपते हुए तैलमे पटक दिया गया, फूल गया। ११वें आक्रमणमे उसके पेटमे लोहेकी पतली सीक पिरो दी गई, यह देखनेके लिए कि कही यह बडा कच्चा तो नही रहा। १२वें आक्रमणमे उसे नमकके गर्म पानीमे डुबो दिया। इतने आक्रमण झेलनेके बाद उसका नाम बडा पडा। यहां एक भी आक्रमण झेलनेको कोई तैयार है क्या? यद्यपि उडदमे जान नही, फिर भी दृष्टान्तका भाग देखें कितने आक्रमण उसपर हुए। यहाँ जरा-जरासे कष्टोमे रो पडते हैं, दिलको बेचैन कर डालते हैं, किंकर्तव्यविमूढ हो जाते हैं। क्या करें, बडा संकट है। अरे संकट क्या? अपने आपको जाना तो सब संकट खतम। रह गई जिम्मेदारीकी बात तो हम किसीके जिम्मेदार नही, सब अपने-अपने जिम्मेदार हैं। सबका कर्मोदय है, उनके उदय से उनका भविष्य बनता है, हम जिम्मेदार नही उनके। मोहमे जिम्मेदार बन जाते हैं। आप सोचेंगे कि गृहस्थीमें तो इस तरह न बनेगा, हाँ न बनेगा, क्योकि सब प्रकारके आराम चाहते हैं तो उसमे आपको राग करना पड़ेगा, तो वह राग सब व्यवस्था बनायगा, पर मोह तो निकाल दो।

(७६) स्वतंत्रताकी सुध भूलकर पराधीन विषयसुखकी चाहमें विडम्बना—सब जीव

स्वतंत्र स्वतन्त्र है, किसीका किसीसे नाता नही। सब अपने-अपने हो में कही न कही रहा करते हैं। मेरी तो एक जिम्मेदारी केवल मेरेपर है। अच्छा भाव बना लो तो भवितव्य अच्छा बनेगा, बुरे भाव बनायेंगे तो भवितव्य बुरा बनेगा। ऐसे इन बाहरी समागमोसे जो उपेक्षा रखता है इस उपेक्षासे बिगाड नही, बल्कि सुधार है। ऐसा ज्ञानी पुरुष आत्मदर्शन करके अनुकूल रहा करता है। तो करनेका काम यह है लेकिन कर क्या रहे ? जैसे कहावतमे कहते हैं कि आये थे हरिभजनको, ओटन लगे कपास याने एक बड़ा काम प्रभुभक्ति करनेको आये थे, पर ऐसी विडम्बनामे फस गए कि वहाँ कपास ओटने लगे। कपास ओटनेकी बात क्यो कहा इस कहावतमे कि दिनभर कपास ओटा तो कोई किलो दो किलो ओट पाये। यो सारा श्रम करके फल कुछ न मिला। तो आये तो थे आत्मकल्याणके लिए इस मनुष्यभवमे, आत्माको जानूँगा, आत्मामे रमूँगा, आत्मामे ही तृप्त रहूगा। भव-भवके कर्मबन्धनको मिटाऊँगा। समस्त आकुलतायें दूर करके अनाकुल शात रहूगा। आये थे इस कामके लिए, लेकिन क्या करने लगे ? पञ्चेन्द्रियके विषय और मनके विषयमे सुख मानने लगे। ये वैषयिक सुख पराधीन हैं। कोईसा भी सुख हो, उसमे कितनी आधीनता है। जितने भी वैषयिक सुख मिले हैं उनकी सम्हाल रखते हैं। जो अपने आधीन बात नही है उसे करना पडता है। जो अपने पास नही था उसका संयोग जुटाना पडता है तब विषयसुख मिलता है।

(७७) **विषयसुख व कषायकी हठका दुष्परिणाम**—एक मास्टर मास्टरानी थे। एक दिन दोनोके मनमें आया कि आज तो पकौडी बननी चाहिए, तफरीका तो दिन था। मास्टर बाजारसे सारा सामान ले आये और मास्टरानीने पकौडी बनाया। वे पकौडी २१ तैयार हुई। सो मास्टरानीने क्या किया कि मास्टरके सामने १० पकौड़ी परोस दी। मास्टरने पूछा—तुमने अपने लिए कितनी पकौड़ी रख ली ? ग्यारह।.....हम ग्यारह खावेंगे, तुम १० खावो।.....नही, नही, हमने अधिक परिश्रम किया, हम ११ खावेंगे तुम १० खावो। इस प्रकारकी हठ दोनोमें पड गई कि हम ११ खावेंगे तुम १० खावो। बादमे यह निर्णय किया कि अच्छा अपन दोनो मौनसे रहेगे जो पहले बोल उठेगा उसको १० खानी पडेंगी। आखिर दोनो मौन हो गए। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गए, दोनो अपनी हठमे जमें रहे। वहो पड़ गए, तीन दिन हो गए। अब तो उनकी दमसी निकलने लगी। इधर स्कूलमे बच्चो ने सोचा कि क्या कारण है जो दो-तीन दिनसे मास्टर मास्टरनी नही आये सो बच्चे लोग उनके घर पहुंचे, द्वारके किंवाड़ फाडकर घरके अन्दर घुसे। देखा तो वहाँ दोनो मरेसा पड़े हुए थे। लोगोको खबर हुई कि मास्टर मास्टरानी तो घरमे मरे पड़े है। लोग जुड़े, दोनोको एक ही गठरीमे बांधा, श्मशान ले गए, वहाँ लकड़ी कंडा आदिसे चिता बनायी, आग लगाने

की ही थे कि मास्टरानी बोल उठी—अरे चलो तुम ११ ही खा लेना, हम १० ही खा लेंगे। समयकी बात कि उस दिन जलाने वाले लोग भी २१ ही गए थे सो वहां सभीने सोचा कि देखो यह भूतनी (चुड़ैल) तो कहती है कि हम इन खड़े हुए लोगोमें से १० लोगोंको खावेंगे और इस भूतसे कहती है कि तुम ११ लोगोको खा जाना, सो इस भयसे उनमे भगदड़ मच गई। तो देखिये—एक जरासी पकौड़ीकी नफरी करनेमे कितनी विडम्बना बन गई तो फिर संसारके इन वैषयिक सुखोंकी नफरीमें न जाने कितनी विडम्बना बन जाय। ऐसी अनेक बातें तो गृहस्थोंके बीच रोज-रोज आती होगी। यह सारा ससार दुःखमय है। अरे सबसे निराले अपने इस ज्ञानानन्द स्वरूपको तकूं और आनन्द पाऊं। क्या कष्ट है ? कष्ट आधीनताका है। अपने स्वरूपको सम्हाले तो इसकी सारी विडम्बनायें समाप्त हो जायें।

(७८) भ्रान्तिज क्लेशके विनाशमे सहजानन्दधर्मका प्रादुर्भाव—जैसे संसारमे किन्ही मनुष्योको किसीके प्रति कोई भ्रम हो गया हो और उस भ्रमके कारण उसके प्रति नाराजी रहती हो और कदाचित् वह भ्रम दूर हो जाय तो वह उमड़ करके प्रेम बरसाता है उसपर, इसी प्रकार भ्रमसे आत्माको कुछ और-और समझकर जो इसके प्रति अन्याय किया जा रहा है उस विषयको लेकर मोह रागद्वेषका लगाव रखकर जो इस आत्मा भगवानपर अत्याचार किया जा रहा है। किसी समय भ्रम मिट जाय तो भ्रमका विनाश होनेपर इस आत्मदेवपर उमड-उमडकर उमंगमे आकर बहुत तीव्र अनुराग जंचता है, जिसको अपने आत्माके प्रति अनुराग है उसको अपने मोक्षके प्रति अनुराग है। अपनी तो सब भलाई चाहते हैं. हर उपायो से अपनेको आनन्दमे रखना चाहिए। तो अपनेको आनन्दमें रखनेकी ही बात धर्म सिखाती है। धर्म कोई कठिन चीज नही, गैर चीज नही, परिश्रमकी चीज नही, आफतकी बात नही किन्तु हम चाहते हैं आनन्द तो सच्चा आनन्द मिले उसीका उपाय है धर्म। और, और उपायोंमें तो बडा खेद होता है, श्रम होता है, कठिनाइयां आती हैं, पर धर्मका ऐसा भला सीधा उपाय है कि उसमे कठिनाइयोका काम नही, किसी तरहका उपद्रव नही। वह धर्म क्या है ? इन्द्रियोका काम छोडकर मनको भी बाहरमें न जाने देकर इस मनको भी अपनेमे नियत बनाकर जो सहज विश्राम मिलता है उसमे जो अद्भुत निज ज्ञानका प्रकाश होता है बस उस आनन्दके अनुभव करनेका नाम है धर्म। धर्मका अर्थ है अलौकिक सत्य, परम आनन्द लूटना। धर्म और आनन्द अलग-अलग चीज नही है। जो वास्तविक आनन्दका अनुभव है वही धर्म है। धर्ममे खेद नही, किन्तु अपूर्व आनन्द प्रकट होता है।

(७९) असार भिन्न मायामय बाह्य वैभवसे मोह तजकर धर्मपंथमे लगनेका अनुरोध—भैया ! विचार करो धर्मके पथमे चलना क्यो कठिन लग रहा ? अगर इस कारण

कठिन लग रहा हो कि कोई वैभवकी चिन्ता है, वैभवकी आशा है. मेरा धन बढ़े, अमुक हो तो वहाँ समझ लीजिए वही कि धन वैभव तो जीर्ण तृणके समान असार है। किसी परिस्थितिमे उपचाररूप थोड़ा काम आता है, इसलिए उसका कुछ लगाव तो होता है, पर उस लगावको उतना लम्बा करना, उसे इतना दृढ करना, वह प्रयोजनसे बाहरकी बात हो जाती है। धन वैभव सब जीर्ण तृणवत् असार हैं मेरे आत्माके हितके प्रसगमे। कल्पनायें करें, लाखोंकी सम्पदा जोड लें, आखिर होगा क्या ? उम्र बढती जा रही है, मरणकाल निकट आ रहा है। कभी मरण होगा ही, मरकर यह जीव न जाने कहाँसे कहाँ पैदा होगा। यहाँकी संपदासे भी लाभ क्या होगा ? और अनेको भवोमे अनेको सम्पदायें पायी। उन सम्पदाओसे आपको यहाँ लाभ क्या है ? तो वैभव जीर्ण तृणवत् असार है। शायद यह सोचा जा रहा हो कि वैभव बढ़नेसे यहाँ लोकमे इज्जत बढती है और देखा भी जा रहा है, लेकिन जब ये लोग, यह समागम, यह समूह असार और बेकार है, मायारूप है तो मायासे इज्जतकी चाह करना कोई सही बात होगी या मायारूप बात होगी ? जैसे नीदमे स्वप्नमे बडे बडे राज्य भोगना यह सही बात है कि मायारूप है। इसी तरह मोहकी नीदमें ये कर्मोंके प्रेरे दुःखिया जन्ममरणसे अपवित्र इन जीवोसे अपनी इज्जत चाहना यह बात एक पागलपन है। और फिर वस्तुत. अपनी कोई इज्जत नही चाहता। जो यह देह मिला, जो इसकी यह मुद्रा है इसको ही समझता है कि यह मैं हू और फिर इसकी इज्जतकी बात मनमे आती है। वे सब विनाशीक चीजें है। मैं शरीर नही हू, इस शरीरसे अत्यन्त निराला ज्ञानज्योतिस्वरूप आत्मा हू।

(८०) अत्यन्त भिन्न दो पदार्थोंकी एकताके परिचयका महाव्यामोह—देखो भया ! कितनी विभिन्न चीज हैं—शरीर तो जड़ है, शरीरमे तो लहू, माँस, हड्डी आदिक अपवित्र चीजें है। और आत्मा परमात्मस्वरूप ज्ञानमयी ज्योतिर्मय है, जिसमें सर्व पदार्थोंका ज्ञान होता है ? कभी असलीमे नकली मिल जाय तो भी भ्रमकी गुजाइश समझो, मगर जीवके साथ तो नकली भी नही मिला, देह तो जीवस्वरूपसे बिल्कुल विपरीत है। यहाँ भ्रमको तो यह विकट मूढ़ता है। कोई भ्रम कर ले तो लोग कहते हैं कि वह हो गया भ्रम, क्योंकि समान असली रुपयोके लाभमे कोई मामूली नकली नोट मिल जाय और कोई उसको ही ले ले तो कहा जायगा कि भाई भूल हो गई। मगर यहाँ असली नकली जितनी भी तो बात नही है कि असली आत्मा है और शरीर कुछ आत्माकी तरह मामूली नकली चीज है। बिल्कुल भिन्न है, विपरीत दशा है। जगलमे सोना मिल जाय और उसने कोई मादका भ्रम कर ले तो वह अधिक पागलपन तो न कहा जायगा और कोई किसी चिड़ियामे ही मादका भ्रम कर ले तो

यह कितनी अटपट बात है ? बिल्कुल भिन्न भिन्न दो बातें हैं। कहाँ तो चिड़िया और कहाँ गाय। कोई दुनियामे ऐसा बेवकूफ न मिलेगा जो चिड़ियाको गाय मान ले। वहाँ भ्रमका कोई काम ही नही। भ्रम तो वहाँ कहलाये कि जब उसके समान कुछ कुछ बात हो। जब समानता जरा भी नही किसी भी बातमे, शरीर और जीवमे, फिर उसका भ्रम जो लग रहा है इससे अधिक और मूर्खता या पागलपन क्या कहा जाय ? तो जैसे लोकमे जो मूर्ख होता है, पागल होता है वह कष्ट पाता है। तो जो परमार्थसे मूर्ख है, पागल है, वह अगर जन्म मरण करनेका कष्ट पाये, कीड़ा मकोडा पेड़ पौधा बननेका कष्ट पाये तो भी उचित ही है।

(८१) दुर्लभ्य सुविधाओंके सदुपयोगसे अपूर्व लाभ उठानेका अनुरोध—इस भवमे जहाँ इन्द्रियाँ ठीक मिली है, मन ठीक मिला है, यहाँ यदि मनका सही उपयोग न करें तो एक तो जीवन बेकार है। दूसरे फिर यह मन और इन्द्रियां न मिलेंगी, हां स्पर्शन इन्द्रिय तो एक लाजमी चीज सी रह गई संसारमे। वह इन्द्रिय तो न मिटेगी, निगोद हो गए तो है वो एकेन्द्रिय मगर और और इन्द्रिया न मिलेंगी। इसका सदुपयोग करें मनको सही मार्गमे लगायें और अपने आपमें अपनेको खोजें और हितकी बात लायें। लेकिन एक दीवानासा बन जाना पड़ता है। जैसे लोकमे किसी स्त्री या पुरुषके प्रेममे दीवाना बन जाते हैं, जिसके ऊपर कथायें सनीमा वगैरह गढे जाते हैं। तो जैसे उन आशक्तोंको और कुछ नही सूझता। सिवाय एक उस लक्ष्यमे इस पद्धतिका दीवाना बनना पडेगा अपने परमात्मस्वरूपके प्रति कि और कुछ न सूझे और यह चित्तमे बात रहे कि मेरेको तो परमात्मस्वरूप होना है। इसके सिवाय मेरा और कोई प्रोग्राम नहीं। भीतरमे एक मुख्य प्रोग्राम बन जाय तो यह मानव-जीवन सफल है। इसके लिए उद्यम क्या करना है कुछ समय भी देना, मन न लगे तो भी मन लगाना, नियम जानकर लेना। नियम इसलिए लिया जाता है कि मन न लगे तो भी उस कामको करे, फिर मन लग जायगा। तो घटा पौन घंटा अपना निजी स्वाध्याय करना, दूसरे को कुछ सिखाना बताना, ज्ञानकी बातमे घंटा डेढ़ घटा प्रतिदिन समय नियमपूर्वक लगाते रहें तो अपने आपमे अपने अर्जनकी बात बन जायगी कि मैंने ज्ञानका अर्जन किया, संतोष मिल जायगा, शान्ति मिलेगी और इस दुनियामे इन लोगोकी बातें देखकर भीतरमें भटकने या विह्वल होनेकी बात न उत्पन्न होगी। पुण्यरस बढ़ेगा, धर्ममार्ग मिलेगा, सही काममे, सच्चे ज्ञानमें सत्य श्रद्धासे रहनेमे अनेक लाभ हैं। जब तक दुनियामे रहेंगे तब तक वैभव सम्पन्न रहेगे। जब यहांसे मुक्त होंगे तो अनन्त आनन्दको पा लेंगे। उसके लिए चाहिए विधिपूर्वक ज्ञानका उद्यम।

(८२) अपने कामका ज्ञान—सत्य ज्ञान पानेके लिए ७ तत्त्वोकी जानकारी प्रथम

आवश्यक है। जैसे तत्त्वार्थसूत्रमें कहते—जीवाजीवाश्रवबंधसम्वरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं, अर्थात् जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं। जीव क्या ? जो चेतन है। जिसमें ज्ञान है सो जीव। और अजीव क्या कि जीवके साथ जो अजीव लगा, कर्म लगा, कोई दूसरी चीज लगी, उपाधि लगी, कोई विरुद्ध चीज लगी, जिसके कारण विकार होता सो अजीव। जब कभी पदार्थमें विकार होता है तो परसम्बन्धके बिना नही होता। पानी गर्म होता, तो पानीके खिलाफ है आग। आगका सम्बंध पाया तो गर्मी हुई। कोई चीज अपने स्वभावको छोड़कर विपरीत बातमें लगे तो समझना चाहिए कि वहां किसी उल्टी चीजका सम्बन्ध है। तो जीवसे उल्टा है कर्म। उस कर्मका सम्बन्ध है जीवके साथ, वह है अजीव तत्त्व। तो जीव और अजीवमे दो बातें आयीं। जीव मायने यह मैं जीव आत्मा। अजीव मायने कर्म। जीवमें कर्म आये उसका नाम है आश्रव। अब जीवमें वे कर्म ठहर जायें उसका नाम है बंध और जीवमें नये कर्म न आयें ऐसा ज्ञान बने, ऐसा वैराग्य जगे जिससे कि कर्म न आये उसे कहते हैं सम्वर और जो पहले बांधे हुए कर्म हैं वे झड जायें उसका नाम है निर्जरा और सब कर्म झड़ जायें उसका नाम है मोक्ष। देखो जैनधर्मकी यह अ आ इ ई बतला रहे हैं। अब व्याख्यान आजकल ऐसे हो गए, और कुछ लोग भी ऐसे ही शौकीन हैं कि जो मूल बात है उसकी तो कुछ बात नही और सुनते जावो, पचासों भी प्रयोजन सुनो, और मूल बात क्या है, तत्त्व क्या है, द्रव्य क्या है ? इसकी बात आ ही नही पाती। किंतु इतनी बात समझे बिना मुक्तिका मार्ग मिल नही सकता। मैं जीव हू। उसके साथ कर्म लगे हैं, कर्म आते हैं, कर्म ठहरते हैं, यहां तक तो आफत आफत थी और कर्म आना बन्द हो, बंधे कर्म झड़ें तो उसका फल है मोक्ष होना।

(८३) कर्मोंसे छुटकारा पानेकी विधिका दिग्दर्शन—अब यह बात कैसे हो कि कर्म झड़ जायें ? इस पर विचार कीजिये तो जैसे गीला कपडा सूखने डाला और वह नीचे गिर गया, धूल लग गई तो क्या करते हो कि फिर सूखने डाल दिया, कपड़ा सूख गया, झिटक दिया, धूल झड़ गई। तो धूलके चिपकनेका कारण तो गीलाई है। गीलाई न रहे तो कर्म झड़ जायेंगे। कर्मके आनेका कारण है रागद्वेष मोह। रागद्वेष न हों तो कर्म अपने आप झड़ जायेंगे। जो बात जिस ढंगसे करनेकी है उसकी सिद्धि उसी ढंगसे मिल सकती है और उपायसे नहीं। और उपाय कितने ही किये जायें वे मुक्तिके कारण नही। मुक्तिका कारण है सबसे निराला अपने आत्मतत्त्वको परख लेना, यह मैं हूं। जो परख लेता उसको क्यों धीरज बनता ? क्यों नहीं घबड़ाता ? उसने परख लिया कि यह मैं हूं। इसमें कष्टका कोई काम नहीं, इसमें कोई अपूर्णता नहीं। उसे तो जीवन मुक्त सा समझिये। बाहरकी कुछ पर-

वाह नहीं। बाहर जो होता हो सो हो। एक महाना है ना—लेवा मरे या देवा बलदेवा करे कलेवा। एक बलदेवा नामका दलाल था गेहू अनाज बिकवानेका। तो बाहरका एक गाडी वाला आया, उसके गेहू उस दलालने बिकवा दिया एक दुकानदारको, पर ऐसे वातावरणसे बिका कि गाडी वाला तो यह सोचता है कि मैं ठग गया, मैंने सस्ता बेच दिया और खरीदने वाला सोचता है कि मैं ठग गया, मैंने महगा खरीद लिया। सो वे दोनो तो उदास बैठे थे। अब उस समय बलदेवाने अपनी कपडेकी पोटलीसे नास्ता (कलेवा) खोला और एक नीमके पेड़के नीचे बैठकर कलेवा करता हुआ कहता जाये—लेवा मरे या देवा, बलदेवा करे कलेवा अर्थात् हमे लेने वाले और देने वाले इन दोनोसे क्या हानि ? इनमे कोई चाहे जो कुछ सोचे चाहे जिसे नुकसान हो तो हो हमे तो अपने कमीशन भरसे मतलब है। तो ऐसे ही यह ज्ञानी पुरुष जानता है कि बाहरी पदार्थोंमें कुछ परिणमन होता है तो होने दो जिसका जैसा होना है वैसा होगा। ज्ञानी पुरुषको भीतरमे अशान्ति नही रहती, धीरज रहता है।

(८४) धीरता व अधीरताकी मनोविकल्पपर निर्भरता—भैया ! देखो—मनके हारे हार है मनके जीते जीत। विपत्ति तो किसीपर कुछ नही है। वह तो माननेकी विपत्ति है। जब आत्मा एक अकेला है। इसमे कुछ चिपका नही, ज्ञानमात्र है। तो विपत्ति क्या चीज ? क्या कष्ट ? पर कल्पनाये किया, मोह किया, अज्ञान बनाया, परको अपनाया तो वह कष्ट हो गया। अब वह कष्ट क्यो, ज्यादह लगता कि दूसरे भी मोहके अनुरूप बात कहते, दूसरे भी उसके लिये कष्टकी बात कहते। मोही मोही ही तो सब बसे है। तो उनकी बात सुनकर लगता कि हां कष्ट तो है। जब वैसी ही बात और लोग कह रहे हैं तो अपने आपको भी समझते हैं कि हां इसमे कष्टकी बात तो जरूर है ? क्योकि सभी उसी प्रकृतिके लोग हैं। वैसा ही कहते है जैसी बात दूसरोकी देखी, दूसरोसे सुनी, वैसी बात पर यह विश्वास कर लेता है बार बार सुननेसे। अगर यह भेद ज्ञानकी बातें तत्त्वज्ञान की बात आपको अनेकानेक बार सुननेको मिले तो आपका चित्त भेदविज्ञानके अनुरूप चलेगा। अब जैसी बात सुननेको मिलती है रात दिन चित्त उसी तरफ तो जायगा। तो बांच कर देखें, उपदेशसे देखें, तत्त्व ज्ञानकी बात अधिक आये तो वहां बान बने और वहां हृदय अनुकूल है। एक छोटी सी कथा है, कि कोई पुरुष एक अच्छी बकरी लिए जा रहा था, तो चार व्यक्तियोने देखा कि बहुत सुन्दर बकरी है, इसे तो छीनना चाहिए। तो उन चारोने सलाह कर ली और सलाहके माफिक वे एक एक मील पर जाकर आगे खडे हो गए। तो जैसी सलाह की थी, वैसा ही सभी ने बोला। पहले मीलमे जो आदमी मिला उसने कहा राम राम यह क्या लिए हुए हो कुत्ता सा ? उसने वह बात अनसुनी सी कर दी सोचा कि मैं तो अच्छी बकरी लिए जा रहा

हूं। आगे गया तो दूसरा बोला—अरे यह कुत्ता कहाँसे लाये? तो वह कुछ शंका करने लगा, अरे मैं कुत्ता ही तो नही ले आया, मैं तो ६५ रुपये दे आया। और आगे गया तो एक मनुष्य और बोला—वाह वाह इतना सुन्दर कुत्ता कहाँसे लाये? उसे और सन्देह हो गया। चौथे मीलपर पहुंचा तो वहाँ भी चौथे पुरुषने वही बात कही—वाह वाह कितना अच्छा कुत्ता लिये चले जा रहे हो? कहां जा रहे इस कुत्तेको लादे हुए? उसने सोचा—अरे मैं तो धोखेमे आ गया। कुत्ता खरीद लाया, लो वही छोडकर चला गया। वे तो चाहते थे ही सो उस अच्छी बकरीको उठाकर ले गए।

(८५) अत्यन्त विलक्षण स्व परमें स्वत्वके भ्रमका विकट व्यामोह—भैया! आप लोग सोचतेहोंगे कि क्या कोई इतना भी बेवकूफ हो सकता है? कुत्ता और बकरीमे तो खासी पहिचान है। कही कुत्ता और बकरीमे इतना अन्तर होता है क्या? आप लोग सोचते होगे कि वह बकरी वाला बडा बेवकूफ था। अरे भाई कुत्ता और बकरीमे तो थोडा भ्रम हो सकता है, क्योकि ४ टांगें उसके भी ४ टांगें उसके भी। कोई ज्यादह अंतर नही, मगर यह तो इतना बेवकूफ है कि जहाँ इतना अधिक अन्तर है कि एक तो है जीव और एक है अजीव, मगर उसे एक मानता है, वह उससे अधिक मूढता है। तभी तो अनुभव करता है कि यह मैं हू, इसने मुझे गाली दी। इसने मुझे यह कहा। अब देखो बकरी और कुत्तेमे तो कुछ समानता है। अगर बकरीको मान लें कि कुत्ता है तो यह अधिक गाली नही, मगर यहाँ जीव अजीव मे तो रच भी सम्बध नही, शरीर जड है, जीव चेतन है, शरीर हाड, माँस वाला है, जीव आकाशकी तरह अमूर्त है, कुछ समानता तो नही, मगर यहाँ भी भ्रम कर बैठते हैं, कर ही रहे हैं—"देह जीवको एक गिनै, बहिरातम तत्त्वमुवा है।" जो शरीर और जीवको एक जानता है वह बहिरात्मा है। तो जब ७ पदार्थोंका सही ज्ञान होता और उन ७ तत्त्वोको जानकर ७ तत्त्वोमे रहने वाला जो एक चैतन्यस्वरूप है, एक ब्रह्म है, अद्वैत ब्रह्म है, इसके बारेमे चर्चा करते है, ऐसा जो ९ पदार्थोंमे रहने वाला एक अद्वैत अन्तस्तत्त्व है उसकी जिसे श्रद्धा हुई, उसका जिसे दर्शन हुआ उसका बेडा पार है और जो यहाँ मोह-मोहमें ही कीडा-मकोड़ा बन गया तो उसका पूरा नही पड सकता। तो जो बडा अच्छा लग रहा है मोह उसके छोडे बिना तो हित हो ही नही सकता और उसका छोडना बडा कठिन लग रहा, पर है सरल चीज। इसके होते ही ज्ञानका छूटना जरूर कठिन है, मगर मोहको छूटना तो सरल है। ज्ञान जगा तो मोह छूट गया याने उल्टा ज्ञान न बने इसीके मायने है निर्मोहता, और विपरीत ज्ञान बने उसके मायने है मोह। सच्चा ज्ञान जग जाय। जीव जीव सब जुदे हैं, उनके कर्म उनके साथ है, मेरे कर्म मेरे साथ हैं, ये मेरे कुछ नही, मैं इनका कुछ नही। ऐसे

दिनोके लिए ये आये, थोड़े दिनको मेरे साथ है। थोडे ही दिनोमे ये अपनी-अपनी करनीके अनुसार अपनी-अपनी गतिमे पहुच जायेंगे। जब ऐसा ज्ञान होता है तो वहाँ ज्ञानप्रकाश है और वहाँ भीतरमे आकुलता नही हो सकती।

(८६) सत्य आनन्दके लाभके अर्थ मनको शुभ कार्यमे नियन्त्रित कर आत्मधुन बनानेकी आवश्यकता—आचार्योंने जो शास्त्रोमे बताया है वह सब हमारी चाहके मुताबिक बताया है। हम सब लोग चाहते है आनन्द। तो उन्होने जो कुछ बताया है वह आनन्द मिले ऐसे उपायको बताया है। कुछ लोग ऐसा सोचते है कि ये ग्रन्थ तो कष्ट हैं। इनका पढ़ना-लिखना, याद करना ये कष्टरूप हैं, विपत्तिरूप है, खूब खावो पियो मौज करो···, लेकिन ये शास्त्र इसीलिए बनाये गए कि आनन्द मिल जाय। जीव जो चाहता है उसीका ही इसमे वर्णन है, पर यह जीव भ्रममे समझता है कि आनन्द हमे इन इन बाह्य उपायोसे मिलेगा। पर आनन्द मिलनेका उपाय केवल एक ही आन्तरिक है। हमारी वर्तमान परिस्थिति जो है उसमे सम्भवतया हम कर नही सकते ऐसा कि निरन्तर ज्ञानमे ही मग्न रहे, यह मन उचकता है। तो कर्तव्य होता है कि इस मनको अच्छे काममे शुभ काममे लगायें और बीच-बीच यथासमय फिर अपने उपयोगको अपने आत्मामे लगाते रहे, ऐसी जीवनचर्या होनी चाहिए। इस मनको बन्दरकी उपमा दी है साहित्यकारोने। जैसे बन्दर बड़ा चचल होता है, वह स्थिरतासे बैठ नही सकता। कभी हाथ हिलायेगा, कभी पैर हिलायेगा, कभी सिर हिलायेगा, कभी अपनी आँखें मटकायेगा, अपनी आँखकी टोपी कभी ऊपर कभी नीचे करता रहता है। यो बन्दर बड़ा चचल होता है, वह कभी स्थिरतासे नही बैठता है। तो जैसे बन्दर चचल होता है इसी प्रकार मनको बताया है कि मन बडा चंचल होता है। भला बतलाओ—पुराणो मे एक कथन आता है कि भगवानके सामने जाकर किसीने पूछा कि इस समय अमुक मुनिके कैसे भाव है ? वह मोक्ष कब जायगा ? कुछ भी पूछा, तो वहाँ बताया कि अभी एक क्षण पहले तो ऐसे भाव थे कि मरता तो नरक जाता और क्षणभरमे बताया कि ऐसे भाव हुए कि मरण करे तो स्वर्ग जाय। बडे-बडे लोगोके ऐसे भाव परिवर्तित होते हैं। तो इस मनको मर्कट बताया सो ठीक बात है। तो ऐसे मर्कट मनको वशमे करनेके लिए उपाय है—शुभोपयोग। न करे शुभोपयोग तो सामर्थ्य तो नही है शुद्धोपयोगकी, सो अशुभोपयोगमे जायेंगे। तो शुभोपयोग होता रहे, किन्तु शुद्धोपयोगकी धुन बनाये रहे, ऐसा वातावरण होना चाहिए।

(८७) मनको नियंत्रित कर देनेमे संतोषके अवसरका एक दृष्टान्त—एक राजाको एक देवता सिद्ध हो गया सो कहा—राजन्, हम तुमपर प्रसन्न हैं। हम सिद्ध हो गए हैं, तुम काम बताओ हमको। जो भी काम बताओगे उसे तुरंत कर देंगे, और यदि काम न बताओगे

तो तुम्हें मार डालेंगे। ऐसा कठिन देवता सिद्ध हो गया। राजा बडा प्रसन्न हुआ, सोचा कि बहुत बडा कमाऊ देवता मुझे मिल गया, सो काम बताने लगा। अच्छा, बगीचा तैयार कर दो, तैयार हो गया।···काम बताओ।···एक तालाब तैयार कर दो, तैयार हो गया,···काम बताओ,···सड़क बना दो, बन गयी,···काम बताओ। अब राजाको विशेष चिन्ता हुई कि यदि काम न बतावेंगे तो यह मुझे मार डालेगा, और पुरानी याद आ गई कि मैं व्यर्थ खुश हुआ था, यह तो मेरे लिये काल बन गया। बहुत चिन्तित रहे और बताता जाय। एक बार उसे एक उपाय सूझ गया। कहा—कोई ५० हाथ लम्बा लोहेका डडा गाड दो, गड गया,···काम बताओ।··· बदर बन जाओ। बन गये, काम बताओ, इसमे एक ७० हाथ लम्बी पतली जजीर एक सिरेमे बाध दो।···बांध दिया, काम बताओ।····जजीरका एक सिरा अपनी गर्दनमे बाध लो।····बांध लिया।···काम बताओ।····देखो जब तक हम तुम्हे मना न करें तब तक तुम इसमें चढो व उतरो। लो वह चढे तो उतरनेका काम बाकी और उतरे तो चढनेका काम बाकी। आखिर वह देवता बड़ा परेशान हो गया और माफी मागने लगा—राजन्, माफ करो, हमे छोड दो, जब तुम हमारी सुध लोगे तब हम आकर तुम्हारी इच्छाके माफिक काम करेंगे। तो जैसे कठिन देवताको वशमें करनेका उपाय राजाने यह पाया कि ऐसा काम बता दिया कि जिससे वह खाली बैठ ही न सका। लो ऐसे ही मनको अच्छे काम मे लगाये रहे, दीन दुःखियोका उपकार, धार्मिक वृत्तियां, धार्मिक सस्थाओके कार्य सब कुछ करें पर अपने उद्देश्यको न भूलें। इन संस्थाओके काम करनेके लिए, समाजके काम करनेके लिए हम जिन्दा नही हैं यह निर्णय रखे। ये तो काम परिस्थितिवश करने पड रहे हैं, कोई चारा नहीं है। मनको कहां लगायें ? आत्मज्ञान और आत्मस्थिरताका उपाय बनानेके लिए मेरा जीवन है। इस उद्देश्यको न छोड़ें। अगर यह उद्देश्य छूट गया तो सस्था या परोपकार या दीनोका उपकार ये सब मेरे लिए मात्र श्रम रहेगे, लाभ न पायेंगे।

(८८) **शुभोपयोग करनेपर भी शुद्ध तत्त्वकी भावनासे कल्याण**—खाना खाने वाले लोग भी तो मिठाई खाते खाते जब विशेष नही खा पाते तो थोडा रूखा, चटनी, नमकीन-आदिक खाते हैं, और रुच ऐसी रखते है कि खाना मिठाई ही है, और खा नही सकते तो थोडा चटनी, नमकीन वगैरह बीच बीचमे चलती है। तो ऐसे ही समझिये कि हमारे लिए ये सब कार्य एक परिस्थिति कराती है। चाहिए तो यह था कि कुछ भी न करना पडता और एक अपने आत्मामे ही हम मग्न रहते। नही कर सकते तो उपकार, शुभोपयोग ये कर लें, पर धुन रहनी चाहिए कि मनुष्य-जीवन पाया है तो आत्मज्ञान, आत्मश्रद्धान और आत्म-रमणका उपाय बनानेके लिए पाया है। यो जिसकी चर्या रहती है वह अपनेमे सतोष पाता

है यहा वहां चलने भागनेके बाद फिर अपने घर आता है, अपने धाममे आता है, तृप्ति लेता है और फिर परिस्थितिया प्रेरित करती है, लग जाता है, फिर वापिस आपमे आता है। तो ऐसा हमारा शुभोपयोग, शुद्धोपयोग दोनो रूपसे हमारा जीवन चले तब हम भ्रष्ट भी न होंगे, हम पात्र भी रहेंगे और आत्मसाधनामे सफल भी हो सकेंगे। अब वैसे भी देखें, ईमानदारीकी चर्या, रात दिनमे २४ घंटे होते है और पुरुषार्थ कितने बताये है—४, धर्म अर्थ, काम और मोक्ष। अब २४ घटेके ४ भाग कर लेनेपर ६-६ घंटेका समय इन चारो कार्योंके लिए निकलता है। ६ घंटे धर्मकार्योंके लिए, ६ घंटे अर्थकार्योंके लिए, ६ घटे काम कार्योंके लिए और ६ घटे मोक्षकार्योंके लिए। आजकल मोक्ष पुरुषार्थ नही बन पाता और जितना बनता उतना धर्ममे शामिल है तो उसकी जगहपर रख लो आपका मनपसंद एक काम। बतायें, क्या? निद्रा लेना (हंसी)। तो अपने इस रात दिनके २४ घटेमे अपनी ऐसी एक चर्या बनायें कि जिससे ये चारो काम बराबर कालविभागसे चलाये जा सकें और अपने इस दुर्लभ मानव-जीवनको सार्थक बनाया जा सके।

(८६) चैतन्यकुलमे सहज आनन्दकी स्वाभाविकी रीति— अब विचारिये तीसरी धुन—मैं सहजानन्दमय हू। सहजानंदमय। सहज किसे कहते हैं? सहजायते इति सहज जब से मैं हू तबसे ही जो मेरे साथ हो उसे सहज बोलते हैं। मैं कबसे हूं। अनादि कालसे हू। जो अनादि कालसे मेरे साथ हो वह कहलायगा सहज। साथ ही साथ हो और साथ ही साथ रहने वाला मैं हूं अनादिकालसे, और तभीसे ज्ञान, दर्शन, आनद, सभी स्वभाव, सभी शक्तियां सभी गुण अनादिसे हैं। तो ऐसा जो आनन्द भाव है, जो आनन्दकी परिणतियोका स्रोतभूत है उस आनन्दरूप मैं हू। जगतमे जो सुख देखा जाता है वह भी आनन्दकी परिणति है और जो दुःख देखा जाता है वह भी आनन्दकी परिणति है। और, प्रभुके जो आनन्द पाया जा रहा है वह भी आनन्दकी परिणति है। आनन्द है एक गुण, शक्ति। उसकी विकृत पर्याय है सुख और दुःख किन्तु शुद्ध पर्याय है आनन्द। शुद्ध पर्याय चूकि गुणके ही समान अनुरूप है इसलिए गुणका भी नाम वही और शुद्ध पर्यायका भी नाम वही। सुख कहते हैं उसे जो ख को सु लगे। ख मायने इन्द्रिय और सु मायने सुहावना। जो इन्द्रियोंको सुहावना लगे उसका नाम है सुख। और जो ख को दुः लगे, इन्द्रियको बुरा लगे, असुहावना लगे उसका नाम है दु.ख। वैसे जगत मे मेरे लिए, आपके लिए, किसीके लिए कुछ भी दुःख नही है। जब दुःख स्वरूपमे है ही नही तो मेरेको दु.ख क्या? किन्तु ऊधम मचाते है इसलिए दुःख रहता है। वह ऊधम क्या? मैं अपनी कुलीनतामे नही रहता। मेरा कुल है चैतन्यभाव। हमारा बहुत बड़ा ऊँचा कुल है। उस कुलके अनुसार जब हम नही चलते और उस कुलके प्रतिकूल चलते है तो यह ही ऊधम

है। जैसे किसी बडे कुलका लडका ओछा व्यवहार करे तो लोग उसको नाम धरते हैं—अरे तू बड़े कुलका बालक होकर ऐसी गदी बातोमे आ गया ? तेरे कुलके माफिक तेरा बर्ताव नही है। तो इसी तरह हमारा कुल है चैतन्य और उस कुलके अनुरूप व्यवहार है ज्ञाता द्रष्टा रहना। ज्ञाता न रहकर जहाँ हम परमे कुछ निग्रह अनुग्रह करने चलते हैं, भाव बनाते है तो हम दुःखी हो जाते हैं।

(९०) सहज आनन्दके लाभकी स्वाधीनता—जिस कामको करनेमें हम समर्थ हैं, स्वाधीन हैं उसे तो करते नही और जो पराधीन काम हैं उनके करनेकी धुन बनाये हैं तो उसका फल है विफलता और क्लेश। जैसे दो पुरुषोसे कहा गया कि तुम इस पर्वतपर पग-पगपर, प्रत्येक स्थलपर घूमकर आवो। अब पर्वतोमे तो गाछ भी हैं, वृक्ष भी हैं, काँटे भी है, पत्थर भी हैं, कैसे घूमा जाय ? तो एक पुरुषने सोचा कि ऐसा करें कि पहले इस सारे पर्वत पर चमडा बिछा दें, फिर आरामसे उसपर दौड़ लगायेंगे। दूसरे पुरुषने सोचा कि मैं अपने पैरोको घुटनो तक अच्छे जूते पहिन लेंगे फिर घूमेंगे। तो अब यह बताओ कि इन दोनो पुरुषोंमे सफल कौन होगा ? अरे सफल तो वही होगा जो जूते पहिनकर घूमेगा। न तो पर्वत पर चमडा बिछाया जा सकता, न दौड़ा जा सकता। अपने ही पैरोमे जूते पहने और घूमे। हम चाहते हैं कि यहाँपर सभी जीव इस तरह चलें, यो परिणमे, मेरी इच्छानुसार चलें, पर ऐसा होनेका हमको कोई अधिकार नही। उनकी जुदी-जुदी कषाय है। वे अपनी इच्छाके अनुसार अपना परिणमन करेंगे। किसीमे धर्मप्रेम हो तो दूसरा इच्छानुसार चले या कोई स्वार्थ हो तो इच्छानुसार चले। और इतनेपर भी जो वह इच्छानुसार चला सो इसकी इच्छा के कारण नही चला, किन्तु स्वयमे ही वैसा भाव उमड़ा कि अपने ही शान्तिलाभके लिए परिणति की। तो हम सब आनन्दस्वरूप हैं। कष्टका कोई नाम नही। एकको भी कष्ट नही, ऊधममें कष्ट है। तृष्णा लगी है। हजारसे लाख हों, लाखसे करोड़ हों तो तृष्णामे कैसे सुख हो सकता ? वह तो ऊधम है। जैनशासनका आदेश यह है कि तुम्हारा कर्तव्य है गृहस्थ हो इस कारण कि ५-६ घटे धन कमानेकी ड्यूटी करो और जो मिले उसके विभाग बना लो ४-६-१० भाग बनाओ उसमें इतना विभाग धर्मके लिए, इतना विभाग पालन-पोषणके लिए, इतना विभाग काज औसरके लिए। बस इसमे संतोष करे। और यह ही तपश्चरण है कि अगर विभाग इतना मिल पाया पालन-पोषणके लिए कि रूखा-सूखा खाकर रहना पडे तो उसमे भी प्रसन्न हैं। कोई काम ही नही कष्टका, और फिर हमारे कोई विवशता भी नही है, सब खाते-पीते हैं, रहते है, पर जो दूसरोको देखकर तृष्णा उत्पन्न होती है बस वह दुःख का कारण है। कष्टका नाम नही, कष्ट हम बनाते हैं, आनन्द सहज है। आनन्द बनाया नही

जाता। वह तो जीवका स्वरूप है। कष्ट बनाया जाता है। इन्द्रियकी प्रवृत्ति है। परपदार्थ का लगाव है, परके सग्रहकी आवश्यकता समझी जा रही है। दु ख हो गया। और जो एक अपने ज्ञानानन्द स्वरूपको निरखकर तृप्त रहे कहाँ कष्ट नही तथा यह काम स्वाधीन है।

(९१) **कार्य करनेका और अनुभव करनेमें हैरानी**—लोग चिन्ता करते है कि ये २-४ बालक अभी छोटे है, इनका तो मुझपर भार है, और यह ध्यानमे न रहा कि इन छोटे बालकोका इस बापसे भी कई गुना अधिक पुण्य है, जिसके कारण इस बापको नौकर बनना पड रहा है। यह बात तो ध्यानमे लाते नही और चित्तमे यह बात बैठाये रहते हैं कि इनको तो मैं ही पालता हू, मैं ही पुष्ट करता हूं। चिन्ता बना रखी है। जहा मिथ्या ज्ञान है वहा क्लेश है जहाँ सम्यक् बोध है वहाँ क्लेशका नाम नही। एक पुरुष घुनिया (रुई धुनने वाला) विलायत गया हुआ था वहांसे स्वदेश जलयानमे (पानीके जहाजमे) बैठकर लौट रहा था। जिस जहाजमे वह बैठा था उसमे हजारो मन रुई (कपास) लदी हुई थी। उस कपासको देखकर उस धुनियाको ये विकल्प उठने लगे कि अरे यह हजारो मन रुई हमे ही तो धुननी पडेगी। उसके दिलमे गम हो गया, सिरदर्द हो गया, बुखार भी आ गया। किसी तरहसे वह अपने घर पहुचा। वहाँ उस धुनियाकी दवा करने अनेक डाक्टर आये, पर किसीके इलाजसे अच्छा न हुआ। एक बार कोई चतुर पुरुष आया, उसने कहा—क्या हम तुम्हारा इलाज करें?···हाँ हां कीजिए। तो उसने सबको भगाया, अकेले वह ही रहा और रोगीसे बात करने लगा।··· कहांसे आये थे?···विलायतसे।···किसमे बैठकर आये थे?···पानीके जहाजमे बैठकर। उसकी आवाजसे ही पहिचान गया कि यही है कुछ निदान।···उस जहाजमे कितने आदमी थे?···आदमी तो कोई न था, मगर उसमे हजारों मन रुई लदी हुई थी। वह सब समझ गया।···अरे तुम उस जहाजसे आये, वह तो आगेके बन्दरगाहपर जैसे ही पहुचा, न जाने कैसे आग लग गई कि सारी रुई भी जल गई और जहाज भी जलकर भस्म हो गया। लो वह चगा हो गया। तो उसके अब यह भाव आया कि हमारी आफत टल गई। अब मेरा धुननेका काम नही रहा। लोग विचार कर-करके बाह्य पदार्थोंमे अपनी चिन्ता बनाते है, आनन्दका घात करते हैं।

(९२) **तृष्णाको उपशान्त करनेका उपाय**—आजके जमानेमे करोडो मनुष्य अधिक दुःखी हैं। खानेको भी नही पूरता। दुष्कालके प्रभावसे भी प्रभावित हैं। कैसे रहते हैं? भूखे रहते है। चिथडा भी नही है। थोडासा चिथडा लपेटे है। झोपडी भी नही है, कितने दुःखी है? उनकी अपेक्षा इन समागत पुरुषोमे देखो लोग कई गुना सुखी हैं कि नही? पर तृष्णा मे दृष्टि जगती है इस बातपर कि हमसे ज्यादह धनिक तो ये अमुक लोग हैं, इनके पास कारें भी हैं, बंगले भी है, उन गरीबोपर दृष्टि नही जाती। कोई पुरुष लखपति है, कदाचित् उसके

१ हजार रुपयेका टोटा पड़ गया तो वह बड़ा दुःखी होता है, उसकी दृष्टि उस १०००) पर ही रहती है, ९९०००) पर उसकी दृष्टि नही जाती। तो दुःखी होनेमे कारण हमारा ऊधम है। अन्यथा हम स्वभावतः आनन्दमय हैं। मेरेमे कष्टका नाम नही। एक १००) रुपये की पूंजीसे खोमचा लगाकर पेट भरने वाले व्यक्तिको कभी एक हजार रुपया मुनाफामें आये तो वह आनन्द मानता है—मुझे ये हजार रुपये मिले हैं। यदि तृष्णाको उपशान्त करना चाहते हो इन अनन्ते दुःखी जीवोपर दृष्टि दो तथा वास्तवमे देखो तो सुख दु.ख कहां है? जैसा ज्ञान करते हैं, जैसा विकल्प करते है वैसी सुख दुःखकी बात होती है। बाहरमें कही न सुख है, न कही दुःख है। हम अपने ज्ञानमे कुछ बात लाते हैं तो सुखी मान लेते है, कभी अपनेको दुःखी मान लेते है। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हू। मैं आनन्दसे रचा हुआ हू। जैसे ज्ञानसे रचा हुआ हूं साथ ही आनन्दसे भी रचा हुआ हूं।

(९३) ज्ञान और आनन्दकी परम मैत्री—ज्ञान और आनन्दमे भेद नही है। जो यथार्थ ज्ञानकी वृत्ति है उसका ही नाम आनन्द है। आनन्दका अर्थ है—समन्तात् नन्दनं आनन्दः, नन्दन शब्द बना है टुनदि समृद्धौ धातुसे। टु का लोप हो जाता है, इ का लोप हो जाता है बीचमे नुम् (न्) का आगम हो जाता, शप् (अ) लग जाता, नदका नन्द हो जाता। फिर रूप बनता—नंदन आ समन्तात् नन्दन आनन्दः। आनन्दका अर्थ है—चारो ओरसे समृद्धिशाली बनना। समृद्धि अर्थमे है यह नद् धातु। जो पुरुष सही ज्ञानसे सम्पन्न होता है वह पुरुष चारो ओरसे सर्व प्रदेशोमे समृद्धिसे भरपूर हो जाता है। तो ज्ञानघन होना सो ही आनन्दका अनुभव करना है। ज्ञाता द्रष्टा रहना यह ही निराकुल दशा है। तो अभेददृष्टिसे मैं ज्ञानमात्र हू। अगर आनन्द मात्र भी कहू तो कुछ हर्ज तो नही, लेकिन ज्ञानके बिना आनन्दकी खबर कौन ले? और ज्ञानके बिना आनन्दका अनुभव कौन करे? ज्ञान तो अनिवार्य चीज है। आनन्दको ज्ञान गर्भित कर देनेपर देखो जो ज्ञानका स्वरूप वर्तन है उसमे कष्ट का नाम भी नही। ज्ञान माने बिना बात चलती नही सो ज्ञानकी ओरसे भी देख लो वह ज्ञानकी ही एक कला है कि आनन्दमग्न होना। यह आनन्द जो एक वास्तविक आनन्द है वह निरपेक्ष विधिसे होता है। किसी भी परपदार्थकी अपेक्षा हो तो यहां आनन्द प्रकट नही होता। आनन्दका निरपेक्ष स्वरूप है। और जो आनन्दरूप नही सो सब क्लेश है।

(९४) वैषयिक सुखमे आनन्दका अभाव—वैषयिक सुखोमे सर्वत्र क्लेश ही है। उदाहरण रूपमे एक खानेका ही सुख लो, तो माना तो जाता है सुख, मगर भीतरमे क्षोभ होता है कि नही। जब कोई चीज अच्छी लगती होगी तो भीतरमे यह स्वभावसे च्युत होता है कि नही? क्षुब्ध हो गया। सुखमे भी क्षोभ, दुःखमे भी क्षोभ। क्षोभके कारण

सुखकी यत्न करते हैं और सुख पानेके बाद भी क्षोभ। लोककी कोई भी स्थिति आनन्दमय नही है। सर्वक्लेश मय है और आत्माकी सहज स्थिति विशुद्ध आनन्दमय है। मोह रागद्वेष तजो और आनन्द लो। रागद्वेष नही तज सकते तो मोह तज लो, आनन्द लो। मोह इसी का ही तो नाम है कि मान लिया कि यह मैं हूं, यह मेरा है। बात यदि सच है तो मोह करो, कुछ हानि न होगी। वही धर्म बन जायगा, क्योकि सत्य बात है, पर सत्य कहा है? आपका क्या है यहा? कुछ कह सकते क्या? न स्थूल रूपसे कह सकते और न सिद्धान्तके रूपसे कह सकते। मेरा परमे अत्यन्ताभाव है। फिर कौन पर मेरा है? सब पर दुःख आया? क्यों आया कि सब एक ही किस्मके रोगसे रोगी है। मोह राग रुष दुःखकी खान। रोग हो तो रोगीका चित्त अपथ्य खानेपर ज्यादा चलता है। जो चीज नुकसान करती हो वह चीज अधिक रुचती है। किसीको वायुका रोग है तो छिलका रहित उड़दकी दाल उसे मीठी लगती है। उससे ही तो वह रोग बना और वही खानेका मन करता है। तो उससे कही वह रोग दूर हो सकेगा? ऐसे ही जिस मोहके कारण इस जीवको दु:ख उत्पन्न होता वही मोह करके यह जीव अपना दुःख मिटाना चाहता है तो उसका यह मोहजन्य दु:ख कैसे दूर हो सकता है? जिस प्रकार खूनका दाग खूनसे धोनेपर नही मेटा जा सकता इसी प्रकार मोहजन्य दु:खको मोहका ही उपाय करके नही मेटा जा सकता। मोहका दु:ख मिटेगा ज्ञानसे। दुःख मिटा तो आनन्द ही आनन्द। बनावट दूरकी तो आनन्द ही आनन्द। ऊधम दूर किया तो आनन्द ही आनन्द।

(६५) मोहजक्लेशको मोहोपायसे मिटानेकी अज्ञानियोंकी चेष्टा—भैया! अपने आत्मा मे विशुद्ध विश्राम है तो अपने स्वरूपमे है। वहाँ कोई कष्टकी बात ही नही है। अन्यथा जैसे ही मोहबुद्धि हुई, विकल्प हुआ कि बस कष्ट ही कष्ट है उसे। कोई एक सेठ दरिद्र हो गया तो उसने सोचा कि अब बहुत दूर देशमे व्यापार करने जाना चाहिए। मानो वह आपके महाराष्ट्र प्रान्तका था और चला गया कलकत्ता (बंगाल) वहाँ उसका व्यापार ऐसा जमा कि १४ वर्षों तक उसे घर आनेका मौका न मिला। वह अपने घरमें अपनी स्त्री तथा एक वर्षके पुत्रको छोडकर गया था। जब पुत्र सयाना हो गया, विवाह करने योग्य हो गया तो इधरसे उस सेठ की स्त्रीने अपने पतिके लिए एक पत्र लिखा कि अपना पुत्र सयाना हो चुका है, आप घर आ कर उसकी शादी कर जाइये। सो उधरसे वह सेठ अपने घरके लिए रवाना हुआ। उस समय यातायातके यांत्रिक साधन न थे बग्घियोके साधारण साधन थे। और इधरसे उस स्त्रीने अपने पुत्रको अपने पतिका पता देकर कहा कि तुम इस पतेपर पहुंचकर पिताजी को लिवा लावो। सो उधरसे वह सेठका पुत्र भी रवाना हुआ। रास्तेमें दोनो किसी नगरमे एक ही धर्मशालामें

पास-पासमें कमरेमें ठहरे । दोनों ही एक दूसरेको देखते, पर अपरिचित होनेके कारण एक दूसरेको पहचान न सके । सेठ कई दिनोका थका हुआ था सो धर्मशालाके चपरासीको कुछ इनाम देकर कहा कि मुझे आरामसे रात भर रखना, मेरे आराम करनेमे कोई बाधा न आने पाये। पर वहां हुआ क्या कि सेठके पुत्रके पेटमे दर्द होना शुरू हो गया । रात्रिके ९ बज रहे थे । सेठने अपने आराम लेनेमे उसे बाधक जानकर चपरासीको बुलाया और कहा इस बालक को यहांसे उठाकर कही दूर कर दो, हमे नीद नही आ रही ।…अरे कहां ले जायें ? रात्रि काफी हो गई है । …अरे ले जाना होगा, मैंने इनाम तुम्हे इस बातके लिए दिया है कि मुझे रात्रि भर आरामसे रखो । खैर चपरासीने उस लड़केको पासके किसी कमरेमे कर दिया । वहां हुआ क्या कि उस लड़केके पेटका दर्द इतना बढ़ा कि वही उसका प्राणान्त हो गया । उस दृश्य को वह सेठ भी देख रहा था पर उसकी आंखोसे एक भी अश्रु न गिरा । दूसरे दिन वह सेठ जब घर पहुंचा तो स्त्रीने बताया कि बच्चेको आपके पास आपके लिवानेके लिए भेजा है । वह सेठ तुरन्त बच्चेका पता लगाने लौट पडा । पता लगाते लगाते उस धर्मशालामे भी पहुंचा जिस मे वह ठहरा था । मैनेजरसे पूछा—कोई इस नामका बालक तो यहां नही ठहरा था । रजिस्टर उठाकर देखा तो कहा—हां ठहरा तो था । …वह कहां गया ? …वह गया कहां ? उसका तो पेट दर्द होनेसे यही प्राणान्त हो गया । प्राणान्तकी बात सुनकर सेठ मूर्छित होकर गिर पडा । देखिये जब बच्चा आंखोके सामने मर रहा था तब तो एक भी अश्रु न गिरा और जब बच्चा सामने नही है मूर्छित होकर गिर पडा । यह फर्क किस बातका आया ?…यह फर्क है मोहका । जब सोचा कि अरे वह तो मेरा ही बेटा था जो मेरे आखोंके सामने मरा था तो वह मूर्छित हो गया । तो ऐसा कठिन है यह मोह । इस मोहसे उत्पन्न हुआ दुःख मोह करके नही मेटा जा सकता । तो इस ममतासे ही दुःख है और ज्ञानसे ही आनन्द है । हर जगह घटाते जावो, सर्वत्र मिथ्या ज्ञानका ही क्लेश है ।

(१६) अविकारस्वभावी ज्ञानमूर्ति भगवान आत्माकी उपासनामें सहज आनन्दका अभ्युदय—मैं तो सहज आनन्दस्वरूप हू । एक अपने आपको ही सम्हाल लूं तो सभी जीव सम्हले हुए हैं । सबके साथ कर्मोदय है । यथार्थ बात समझ लें तो इसकी चिन्तायें दूर होती हैं । फिर अपने आपमें ही विश्राम पाये । अपनेको देखो कि मैं सहज आनन्दस्वभावी हूं । कष्ट है विकार । और किसी भी वस्तुमे अपने आप विकार होता नही । परसग पाये बिना विकार हो नही सकता । कुन्दकुन्द भगवानने स्पष्ट बताया है कि 'जह फलियमणी सुद्धो ण सय परिणमदि रायमादीहिं । रगिज्जदि अण्णेहिं दु सो रागादीहि दोसेहिं ।' अमृतचन्द्र सूरि ने भी स्पष्ट कहा है कि "यथा खलु स्फटिको पलः स्वयं परिणामस्वभावत्वेऽपि स्वस्य शुद्धत्वात्

स्वयं रागादिभिर्न परिणमते, किन्तु स्वयं रागादिभावापन्नतया परद्रव्येणैव स्वस्य रागादिनिमित्तभूतेन रागादिभिः परिणमते । तथायमात्मा" इत्यादि । जैसे स्फटिक पाषाण है वह अपने शुद्ध स्वच्छ स्वभावको लिए हुए है । वह अपने आप लाल पीला आदिक रूप नही परिणमता । वह अपना एकत्व लिए हुए है । वह तो किसी लाल पीली आदिक चीजका निमित्त पाकर उसरूप परिणम जाता है । यही बात इस आत्मतत्त्वकी है । न जातु रागादिनिमित्तभावमात्मात्मनो याति यथार्ककान्तः । तस्मिन्निमित्तं परसंग एव वस्तुस्वभावोऽयमुदेति यथार्ककान्तः ॥ अर्थात् यह आत्मा शुद्ध स्वच्छ स्वभाव वाला है, यह स्वयं अपने आपकी कषायोका निमित्त नही बन सकता । होता क्या है कि जो स्वयंमें क्रोध है, मान है ऐसी जो प्रकृति है वह है इस आत्माके क्रोध, मान आदिकका ज्ञानविकल्पके माध्यमसे निमित्तभूत । उसका उदय है । उस समय उन कर्मोंमे स्वयं खलबली है । उसके विकल्पसे जीवमें खलबली नही होती क्या ? क्षोभ दोनो जगह है, भले ही उसका अनुभव न कर सके कर्म, पर खलबली तो होती हैं । जब कानमे नीबूका रस या कोई रसायनकी चीज डाली जाती है तो वहाँ एक उफान आता है, पर उसका अनुभव नही कर सकता कान, पर उफान आना, क्षुब्ध होना यह बात जीवमे भी होती है, अजीवमे भी होती है । जैसे कोई चूनेका डला ६ महीनेको म्याद वाला है वह तो उसका उदय है, पर उसमे पानी पड़ जाय तो वह जल्दी ही पिघल जाता है । तो यह उसकी उदीरणा हो गई, ऐसे ही ये कर्म जो पहिले बँध रहे थे उनमे अनुभाग उसी समय निश्चित हो गया था । जब उदयकाल आया तो वह अनुभाग फूट पड़ा, विस्फोट हो गया । जैसे मानो बम फूटा । कर्म फूटा, कर्ममे विस्फोट हुआ । अब एक क्षेत्रावगाह है यह जीव । तो मेरेमे जो कुछ कर्मका रंग है, जो कुछ भी विष है, जो भी उसका अनुभाग है वह यहाँ त्यक्कारूपमे झलका और तुरन्त ही यह स्वभावसे च्युत हो गया और च्युत होकर फिर उसको अपनाने लगा । विकार बन गया, आनन्दका घात हो गया । कोई बच्चा पोछेसे जोर से डरानेके लिए एकदम बोल दे तो धधक जाता है ना ।' उस धधकमे होता क्या है कि हम अपने स्थानसे खिसक गए और उस उपयोगमें लग गए । यह ही बात तो उस कर्मके ऊधममें होती है उस विकारसे निज भगवान आत्माको देखो, सहज आनन्दका अभ्युदय होगा ।

(९७) जीवविकारके निमित्तभूत कर्मोंकी वास्तविकता—ये कर्म काल्पनिक नहीं हैं । कल्पनासे बनते तो जरूर हैं, मगर बननेके बाद फिर कहे कि वे तो काल्पनिक हैं, उन पर निमित्तका उपचार किया जाता है । ये उपचार वाले निमित्त नहीं हैं । रोटी सिकती है तो आगपर निमित्तका उपचार है क्या ? यह उपचार वाली बात नही है । वहाँ निमित्त पाकर उपादानमें अपना प्रभाव होता है । हाँ स्वतन्त्रता अवश्य है कि रोटी अपने आपके शोत

पर्यायको छोड़कर उष्ण पर्यायमें आयी, कच्ची अवस्था त्यागकर पक्की अवस्थामें आयी यह रोटीकी अवस्था आगसे नही आयी। अग्नि और रोटी दोनो नही पकी। पकी रोटी, पर परसंग बिना यह विकार नही बन सकता। जीवके विकारमे तीन प्रसंग आया करते हैं— उपादान, निमित्त और आश्रयभूत। ग्रन्थोमे आश्रयभूतको भी निमित्त कहते हैं और निमित्त को भी निमित्त कहते हैं। जैसे सम्यक्त्वका निमित्त है ७ प्रकृतियोका उपशम आदिक। और यो भी तो लिखा है कि सम्यक्त्वका निमित्त है जिनबिम्बदर्शन, देवदर्शन, वेदनानुभव, परोपदेश। निमित्तकी बात कहते तो है मगर विवेक करना चाहिए कि वास्तविक निमित्तके लिए यह निमित्त शब्द कहा है और आश्रयभूतके लिए यह निमित्त शब्द कहा है। दूध दूध सबका नाम है। बरगदके पेड़से भी दूध निकलता है, गाय, भैस वगैरहसे भी दूध निकलता है, और एक आकका पेड होता है उसमे भी दूध निकलता है। नाम धर दिया दूध, इसका भी है उसका भी है, पर पीने वाला विवेक रखता है ना कि यह आकका दूध तो काटा निकालनेके लिए है और गाय भैसका दूध यह पीनेके लिए है। तो यहां भी विवेक रखना होगा कि जिनबिम्बदर्शन या नौकर-चाकर या पुत्र मित्र जो प्रेमके, क्रोधके कारण बनते हैं, वे आश्रयभूत कारण है। निमित्त कारण तो उस प्रकारका कर्मोदय है।

(६८) निमित्तकारणका समुचित वर्णन स्वभावदृष्टिके लिये—ग्रन्थोमे निमित्त कारणकी बात बताकर स्वभावदृष्टि करायी गई है कि यह नैमित्तिक भाव है, तेरा सहज उत्पन्न होने वाला भाव नही है। तू उनमे राग मत कर। तू अपने स्वभावको पहिचान। आनन्दका घात यो ही तो किया जा रहा है। भले ही कर्मोदय हो। यदि ज्ञानबल इतना है कि हम आश्रयभूतमे उपयोग नही जुड़ाते तो व्यक्त विकार तो बनेगा ही। अव्यक्त विकार मे आश्रव बंधकी विशेषता नही। इसीलिए तो चरणानुयोगकी सेवा है? तो स्वभावदृष्टि करना है, उसमें ही आनन्द मिलता है। परदृष्टिमे अनात्मतत्त्वको अपनानेमे आनन्दका घात है। तीन तरहके जीव है ना बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। जो देह जीवको एक माने सो बहिरात्मा याने जो बाहरकी चीजोको आत्मा माने सो बहिरात्मा। जो अन्दरके स्वरूपको आत्मा माने सो अन्तरात्मा याने ज्ञानानन्दस्वभावमात्र अपनी प्रतीति रखे सो अन्तरात्मा और जो परम हो गया आत्मा सो परमात्मा। परमका अर्थ है परा मा लक्ष्मी विद्यते यत्र सः परमः परमश्चासौ आत्मा चेति परमात्मा। परमात्मत्व प्रकट होता है नित्य अन्तःप्रकाशमान चित्स्वभावकी उपासनासे। चित्स्वभावकी उपासनाकी प्रेरणा निश्चयदृष्टिसे मिलती है, क्योकि निश्चय दृष्टिमे किसी भी अन्यका लक्ष्य नही है। इसी प्रकार चित्स्वभाव की प्रेरणा व्यवहारदृष्टिके निर्णयसे भी मिलती है, क्योकि व्यवहारनयने यह बताया कि

विकारनैमित्तिक है, परभाव है, आत्माका स्वभाव नही। ऐसा निरखने वाला पुरुष वही तो होता है जिसने स्वभावका परिचय किया है। सो वह नैमित्तिक भावसे हटकर सहजभावमें उपयुक्त हो जाता है।

(९९) आत्माका स्वरूप और अभिन्न कर्तृत्व—मैं क्या हूं ? क्या करता हूं ? क्या भोगता हू ? मेरा क्या है ? इन चार प्रश्नोका सही उत्तर पा लेनेमे आनन्दका मार्ग मिलता है। मैं क्या हू ? मैं ज्ञानज्योतिर्मय पदार्थ हू। जिसके साथ श्रद्धा, चारित्र, आनन्द आदिक सभी लगे हुए हैं, मेरा क्या है ? मेरा स्वरूप सो ही मेरा है। मेरा वह है जो मेरेसे कभी अलग नही होता। जो मेरेसे अलग हो जाय वह मेरा क्या ? लोग घरको क्यो मानते कि यह मेरा है ? उन्हे यह विश्वास है कि इस घरको कोई छुडा नही सकता। इस घरसे मुझे कोई निकाल नही सकता। इसकी नगरपालिकामे रजिस्ट्री हो गई है। मान लिया है कि यह मेरा है, पर यह भी तो छूटेगा। मेरा क्या है ? मेरा स्वरूप मेरा ज्ञानानन्द वैभव। मेरा निज अतः प्रकाशमान जो सहजस्वरूप है वह मेरा है। इस सहज स्वरूपका जिसने भान किया, इस सहजस्वरूपमे जिसकी रुचि जगी, इस सहजस्वरूपकी ओर जो नम्र हुआ वह पवित्र पुरुष है। मेरा केवल एक ज्ञानानन्द वैभव है। मैं क्या करता हू। केवल अपने आपके परिणामको करता हू। इससे बाहर कुछ करनेका सामर्थ्य नही। वस्तुस्वभाव ही यह है कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपका ही परिणमन करने मे समर्थ होना। परको मैं करता हूं। यह भ्रम क्यो लग गया, इसमे तथ्य तो है निमित्तनैमित्तिक भाव पर उससे बढकर चले तो कर्तृकर्मभावमे आ गए।

(१००) मेरे परमें कर्तृकर्मत्वभावका अभाव—कर्तृकर्मभावकी बुद्धि मिथ्या है, निमित्त नैमित्तिकभावका सदर्शन सम्यक् है। मेरा बाहरमे कुछ भी नही, क्यो नही कि वह मेरे साथ नही है। मै उनकी परिणति नही कर पाता। और उनको भोग भी नही पाता। मैं सबसे निराला अपने आपमे रहता हुआ अपनी ही तरंगोसे बना रहता हूं। मैं परपदार्थको जानता हू। इतना भी तो कर्तृकर्मत्व नही है। मै जानता हू इसका अर्थ यह है ज्ञान जो गुण है उसके अनुरूप परिणमता रहता हूँ। परको जानता नही, क्योकि जाननेका आधार है ज्ञाताका प्रदेश। जाननेकी क्रियाका आधार है आत्माका प्रदेश। कही प्रदेशको छोडकर क्रिया हुआ करती है ? कोई भी जगह देख लो। कुल्हाडीकी क्रिया, चाकूकी क्रिया, चाकूको छोडकर कही अन्यत्र हो जाती है क्या ? मेरी क्रिया मेरेको छोडकर अन्य जगह कहां होगी निराधार ? तो मेरी जानन क्रिया है, वह मेरे प्रदेशमे ही है। यह मेरी कला है कि मैं जानता रहता हू और जगतमे जो जैसा पदार्थ है वैसा जानता रहता हूँ। ऐसा जानने पर

भी किसी भी पदार्थने मेरेमे कुछ लाया नही, मैंने परपदार्थोंमे कुछ किया नही। ऐसा ही सहज योग है कि मैं जानता रहता हूं। और ऐसा जानता रहता हूं जैसे कि जगतमे पदार्थ। अब यहां यह कहना कि मैं पर पदार्थको जानता हूं, यह व्यवहार है और वो उपचार है। और बूढे कर्तृकर्म भाव है। कर्तृकर्मभावरूपमे ऐसा ही कोई सही माने तो मिथ्या है। कहनेमे दोष नही, कहनेकी संक्षिप्त भाषा ही यह है, अगर ऐसा ही कोई सही समझले कि मैं इन पदार्थोंसे जानन क्रियाको प्रेरित करता रहता हू सो बात गलत है। मैं अपने आपमे रहता हुआ ही जानता रहता हू। कर्तृकर्मभाव नही है।

(१०१) दृष्टान्तपूर्वक अन्योन्यकर्तृत्वके उपचारके मिथ्यापनका दिग्दर्शन—भीतपर यह लाल रग पुता है तो कहते है लोग कि इसने भीतको लाल कर दिया या यह लाल रंग भीतका है। वस्तुत: ये दोनो बातें गलत है। लाल रंगने भीतको लाल कतई नही किया, किंतु किया क्या कि लाल रंगने अपने ही प्रदेशोमे इतना फैलाव बना लिया। भीतका कुछ नही किया। यह रग था डलेके रूपमे। पानीका सम्बन्ध पाकर यह रग बहुत पतला फैल गया। तो जो उसके रूपमे था वही पतला फैलकर ऐसा बन गया। इसने अपने आपका फैलाव किया, भीतका कुछ भी नही किया। वह तो इस लाल रंगका ही लालरग है, भीतका लाल रग नही है। तत्त्वदर्शी पुरुष ऐसा जानता है। कहनेको तो कहा ही जाता है। ऐसे ही मेरे ज्ञानमे विषयभूत हुए है पर पदार्थ, पर मैंने पर पदार्थोको जाना सो बात नही। मैंने अपने आपको ही जाना, पर यह व्यवहार हम क्यो करते है कि इस चौकीको विषय करते समय मैंने क्या किया है? इसको बतानेका और कुछ उपाय नही है। यही कहना पड़ेगा कि मैंने चौकीको जाना। मेरे जाननेमे चौकी विषयभूत हुई और मेरा जानना भीतरमे इस तरह चल रहा, इसको बताने वाला शब्द क्या है? बस यह ही शब्द है यह ही व्यवहार है।

(१०२) आत्मतत्त्वकी सुध भूलकर परमें उपयुक्त होनेका दुष्परिणाम—निश्चयसे मैंने अपनेमे अपने आपका जानन किया अपनेमे अपने ज्ञानका विकल्प किया। अपनेमे अपने ज्ञानके अनुसार क्षोभ, शान्ति, आनन्द किया। इसका किसी परके साथ रच भी सम्बंध नही है। पर वाह रे मोह, तुमने अनादिकालसे अब तक भटकाया, मैं अपने ऐसे निर्लेप आत्मतत्त्वको दृष्टिमें न ले सका। व्यर्थ क्रिया की, व्यर्थ समय खोया, व्यर्थ विकल्प किया, फल यह मिला कि नाना दुर्गतियोमे जन्ममरण करके दुःख उठाया। एक ही कर्तव्य है इस जीवनमे करनेका कि सबसे निराले इस आत्मतत्त्वके दर्शन कर लें। इसीमे बुद्धिमानी है, चतुराई है, इनके सिवाय बाकी कितने ही प्रसंग बनें, उनमे इस जीवको कुछ भी सारकी बात नही है। आनन्दका धाम है यह स्वयं आत्माराम। केवल आनन्दधाममें ही दखे तो इसका आनंद सामने है। और,

आनन्दधामको छोडकर बाहरी बातोंमें कर्तृत्व भोक्तृत्वका विकल्प करे तो क्लेश संक्लेश हैं। मनके विषयको बढाया, लोग मुझे अच्छा समझें, व्यर्थका विकल्प किया। हो ही नही सकता ऐसा, और हो ही जाय तो उसे क्या मिला ? तीन लोकके जीव भी कदाचित् प्रशसा कर दें तो भी उससे मेरेको क्या मिलता है ? कुछ भी नहीं। भगवंत प्रभु इस अंतः परम तपश्चरण के प्रसादसे हुए हैं। अपने स्वरूपको अपनेमे समाये रखना, अपनेसे बाहर न जाना, यह ही विधि थी, तो प्रभुता पायी। इसके लिए पहले कुछ यथार्थ बोध चाहिए। और क्रोध, मान, माया, लोभको दूर करना चाहिए।

(१०३) धर्मप्रकारमें धर्मपालनकी विधिका सकेत—धर्मपालनकी विधि यह दशलक्षण धर्मका क्रम बता देता है। क्रोध, मान, माया, लोभ इनका परिहार करें तो इससे सत्य उत्पन्न होगा। जब तक कषाय है तब तक सत्यका विकास नही है। हो ही नही सकता। आपेक्षिक सत्यको कोई सत्य मान ले वह बात अलग है मगर वास्तविक सत्य तब ही प्रकट होता है जब कषायें दूर होती हैं। सत्य प्रकट हुआ अर्थात् स्वच्छता प्रकट हुई तो इसमें वास्तविक संयम पात्रता होती है। जैसे आक्सीका कांच जिसको सूर्यके आगे करनेपर, सूर्यकी किरणोंको केन्द्रित किए जानेपर नीचे रखी हुई रुई अथवा कागजके टुकड़े जल जाते हैं। बालक लोग इसका बहुत खेल करते हैं। तो अगर वह कांच मैला है तो उसमें सूर्यकी किरणोंको केन्द्रित करनेका सामर्थ्य नही है। और न उसमें प्रतापका सामर्थ्य है। तो सबसे पहले उस काचको साफ किया, स्वच्छ बनाया, फिर संयत कर दिया तो उसका फल यह होता है कि जो उसके नीचे प्रताप उत्पन्न होता है तब वह जलने लगता है, और जलकर अकिञ्चन रह जाता है। रहा कुछ नही। ऐसे ही क्रोध, मान, माया, लोभका मैल दूर करके सत्य उत्पन्न किया, फिर उस सत्यमे उपयोग का सयमन किया तो भीतरमे वह चैतन्यका प्रतपन होता कि यहांसे मैलका त्याग होने लगता हैं तब यह अकिञ्चन बन जाता है। बाहर कुछ नही है इसका, जो है सो ही है, इस विधिसे यह ब्रह्मचर्य पदको पाता है अर्थात् आत्माको आत्मामे मग्न करनेकी पूर्ण स्थिति तब प्राप्त होती है।

(१०४) निजएकत्वके परिचयमें आत्मबलका अभ्युदय—जितना अपनेको अकेला समझा जाय उतना ही तो बल बढता है और जितना अपनेको २ मे ४ मे मिला हुआ देखा जाय उतना ही इसका बल घटता है। कोई अकेला रह जाय तो लोग कहने लगते कि यह बड़ा अभागा है।...अरे अभागा है कि उसे पवित्रता प्रकट होनेका मौका मिला। अपनेको अकेला अनुभव करनेका मौका मिला है। अपनेको अकेला अनुभव करनेका सौभाग्य किसे प्राप्त हो सकता ? ससारके विरले भव्य पुरुषोको छोडकर सारे जीव मलिन हैं, इनको यह सौभाग्य नही मिला कि वे अपनेको अकेला अनुभव कर सकें। अपनेको एक अकेला समझना

है। देहसे भी न्यारा, कर्मसे भी न्यारा, क्रोधादिक भावोंसे भी न्यारा, तर्क तरंगोंसे न्यारा, ज्ञान की वृत्तियोसे न्यारा सहज ज्ञानानन्द स्वभाव मात्र यह मैं अकेला हूं, ऐसी जिनकी दृष्टि पहुंची उनके सहज आनन्द प्रकट होता है करनेका यही काम है। स्थिर आसन करके श्वास नलीको सीधा रखकर कुकडू न बैठें, नमकर न बैठें, सीधा बैठकर और अपने आपकी दृष्टियोंको बन्द करके भीतरमे निरखें, सारे विकल्प छोड दें। जब सर्वत्र धोखा है तो मैं किसीको सोचूं ही क्यो ? विश्रामसे बैठ जायें, एक निर्विकल्प दशा होगी, मात्र सत्य आनन्दका अनुभव होगा, वह दशा न ठहरेगी, लेकिन उसके स्मरणसे सारा जीवन शान्तिमे व्यतीत होगा। जैसे कि संसारी मनुष्य बढिया पदार्थ खाते है; बहुत मधुर मिठाई खाते है, तो खानेके बाद कुछ रहता नही कि गलेमे कुछ अटका हो या जीभ पर हो। वह गया सो गया, मगर खाते समय जो उन्होने मौज माना उस मौजका स्मरण करके बाकी दिन भी खुश होते रहते है। आज मैंने यह खाया। अरे खाया वह तो गया, रहा कहां, पर उसका स्मरण करके दिन भर खुश रहते है, यह तो यहांकी मायाकी बात हैं, पर जिसने अपनेमे उस सहज आत्मीय आनन्दका दर्शन किया, स्पर्श किया, अनुभव किया उसके स्मरणके प्रसादसे उस भव्यपुरुषके सम्वरकी पात्रता है, निर्जराकी पात्रता है, आनन्दकी पात्रता है, पवित्रता रहती है।

(१०५) अच्छा बुरा सब अन्दरमें खोजनेसे सही तत्त्वका निकाल—कुछ खोजना है तो अन्दरमे खोजना है। बाहरमे खोजनेका श्रम करना, दिमाग लगाना यह इसके लिए बेकार है। जहाँ एक कल्याणके प्रसंगकी बात कही जा रही उसमे यह ही निर्णय है, तो अपनेको अपनेमे परिपूर्ण निरखनेका काम पडा है। बाह्य पदार्थ कोई मुझे कष्ट नही देते, ये बाहरी पदार्थ कोई मुझपर जबरदस्ती नही करते कि तुम मुझे देखो, सूंघो, सुनो, खावो। यह ही जीव अपनी योग्यतासे कल्पनायें कर करके इन विषयोंपर टूट पडता है। इसमें अपराध किसी बाहरी पदार्थका नही है। जैसे कि लोग सोचते रहते है कि मुझको इसने दुःखी किया, मुझको इसने कष्टमे पटका। बालककी तरह। अगर २–१ वर्षके बालकको उसकी माता लिए जा रही है, दरवाजेसे निकलते समय जरासा कपाट उस बच्चेके सिरमे लग जाय तो वह रोने लगता है। तो वह माँ उसका रोना बंद करानेके लिए क्या उपाय करती है कि उस कपाटमे दो एक तमाचा लगा देती है। वहाँ वह बच्चा यह सोचता कि इस कपाटने मुझे दु खी किया तो मेरी मां ने उसे सजा दिया। तो ऐसी ही दशा इन अज्ञानी जीवोकी है। वे कल्पनायें करते है कि इसने मुझे दु.खी किया इसको सजा देना चाहिए। इसने मुझे कष्टमे डाला तो मैं भी इसे दु ख दूंगा। अरे कष्टमे डालने वाला कोई दूसरा नहीं है। भीतर से कल्पनायें जगाते और कष्ट पाते।

(१०६) सकल जीवोंमें स्वरूपसमताकी दृष्टिका विलास—सब जीवोको समान समझें। सबमे परमात्मस्वरूपके दर्शन करें। मनुष्योकी तो बात ही क्या है? पशुपक्षी, कुत्ता बिल्ली, कीडा मकोडा आदि इनमे भी परमात्मस्वरूपका दर्शन करें। है तो सब समान पर कर्मोपाधिवश यह ऊपरी अन्तर आया है। आपकी वृत्ति सौम्य हो जायगी। मच्छर काटेंगे तो आप थप्पड न लगायेंगे। उसे प्रेमसे भगायेंगे, क्योंकि मच्छरका काटना सहा तो जाता नही, भगाना पड़ेगा और साथ ही उसके आत्माके प्रति विश्वास है कि है तो परमात्म-स्वरूप। कर्मोदय इस प्रकारका है। किसी बात पर अन्याय न कर सकेगा ज्ञानी पुरुष। मेरेको कष्ट देने वाला मेरा ही खोटा परिणमन है। बाहरी पदार्थ कोई मेरेको कष्ट नही पहुंचाता। अगर यह बुद्धि जगती है कि इसने कष्ट दिया, इसने सुख दिया तो वह अज्ञान है। राग स्वय अपवित्र चीज है। राग स्वय अघकार है। रागमे की हुई चेष्टा बुद्धिमानी नही है। अगर किसी रागकी प्रशंसा भी की गई। जैसे दर्शनविशुद्धि भावनामे कल्याण भावना की प्रशसाकी गई। सब जीवोपर इतना अनुराग उमडा है कि सबके कल्याणकी भावना है, सबके कल्याणकी भावना हुई है। तीर्थंकर प्रकृतिका बंध होता है तो उस रागमे तीर्थंकर प्रकृतिके बँधनेका सामर्थ्य जो आया वह इस ही साम्यक्त्वके सपर्कके कारण आया। किसी बड़े आदमीके साथ रहने वाले चपरासीमे भी तो एक प्रभुता बनी रहती है। इस सम्यक्त्वके साथ रहने वाले रागमे इतनी प्रभुता है कि तीर्थंकर प्रकृतिका आश्रव हो जाता है, पर वह प्योर याने सिर्फ रागका सामर्थ्य नही। किन्तु इस सम्यक्त्वके सहवासका सामर्थ्य है कि कल्याण भावनाके अनुरागसे तीर्थंकर प्रकृतिका बध होता है।

(१०७) स्वाधीन वर्तनामे विडम्बनाका अभाव—सर्वत्र, मैं अपनेमे अपना काम करता हूं मैं अपनेमे अपनी परिणतियोको भोगता हू। मेरेको कही टोटा नही, मेरेको कही हानि नही, मेरा किसी भी स्थितिमे बिगाड नही। क्यो हठ हो बाहरी पदार्थका। कर्तव्य भले ही हो, जिस परिस्थितिमे हैं। मगर यह मानना कि ऐसा हुए बिना मेरा जीवन क्या? यह हठ न होना चाहिए। जो प्रकृतिको मजूर है वह यहाँ होता रहे। जो मेरेको मंजूर है वह धन मेरे पास सदैव है। बिगाड क्या है? ऐसा अपनेमे अपनेको अकेला जो निरखे वह पुरुष बडा पवित्र आत्मा है। शुद्ध ज्ञानका प्रकाश हो वही स्थिति उत्तम है और यह हो सकता है शुद्धज्ञानकी दृष्टिसे ही, शुद्ध ज्ञानका सचेतन करनेसे ही। वहाँ बध नही, वहाँ आपत्ति नही, ज्ञानप्रकाशमे कोई विडम्बना नही।

(१०८) सत्सङ्गकी महिमा—जब चरित्र सुनते है कि श्री नेमिकुमार सजी सजाई बारातमे से एक थोडा योग पाकर लौट गए, दीक्षित हो गए और यह राजुल भी वहाँ जाकर

पहले तो थोडा अनुरागकी बात की, पर बादमें वह भी दीक्षित हुई, प्रसन्न हुई। मोही जीव कथा तो सुन लेते है, पर भावभासना नही बनती। शायद वे सोचते होगे कि ऐसा हो कैसे सकता है ? वह तो कथा है, सुन लेनेके लिये है, वह बात चित्तमे नही आ सकती। कैसा अपूर्व अलौकिक प्रेम नेमीका राजुलपर कि जिसकी मिसाल नही हो सकती, खुद दीक्षित होकर कल्याण तो किया ही और राजुल भी विरक्त होकर दीक्षित होकर अपना कल्याण कर गई यह नेमिके धर्मवात्सल्यका प्रभाव है। ऐसे वात्सल्यकी कोई मिसाल भी हो सकती है क्या ? तो जिनको अपने ज्ञानस्वभावकी प्रीति है उनका सहवास उनका सत्सग करने वाला पुरुष भी संसारसे पार हो जाता है। ऐसी गोष्ठी, ऐसा रोजका प्रसग, ऐसा यहांका सत्सग यह तो एक अपूर्व घर है, अपूर्व कुटुम्ब है, जिसकी कोई मिसाल नही। लोकका माना हुआ कुटुम्ब तो पापमे लगानेकी प्रेरणा करता है। अगले भव और गतिको बिगाडनेका हो प्रोग्राम बनाता है। उसे क्या कहेगे ? परिवार। सत्य परिवार है धर्मात्माजनोंकी गोष्ठी, धर्मात्माजनोका मिलन। जहाँ सबका हो यह परिणाम हो कि मुझे कुछ न चाहिए। न विषय न कीर्ति, न नाम न यश। जो धर्मात्माजनोको चाहिए सो मुझे। ज्ञान वैराग्यकी प्रीति इन्हे सो मुझे, इसीमे सब बढें मैं भी बढूं। यहाँ कुछ न रहेगा। जो न रहेगा, उसका लगाव क्यो करूँ ? ऐसा अन्तः आत्महितके जहाँ प्रोग्राम चलते हो, कुटुम्ब वह है। मित्र मण्डली है वह सच्ची जहां ज्ञानके सचेतनके लिए प्रेरणा मिलती हो। जहाँ ज्ञानका सचेतन नही वहाँ ही यह विकल्प है कि मैंने परको किया और परको भोगा। मैं अपने ज्ञानको ही भोगता हू। कर्म आते है, उनका अनुभाग होता है, उनका फल आता है। अरे वह मेरे चेतने के बिना ही निकल जाय मेरे भोगमे मत आये, क्योकि इसका लगाव इसका भोग बहुत कटुक परिणाम देता है। जिन्होने सहज आनन्दका स्वरसमे अनुभव किया है उनको अस्थिर विषय क्या नीके लग सकते है ? जिसने अपने ज्ञानप्रकाशको ज्ञानमे मिलाकर अथवा एक तन्मय होकर एक क्षेत्र बनाया उस पुरुषको ये इन्द्रिय निषय, मनके विषय ये कुछ मूल्य नही रखते। ऐसा यह मै स्वयं ज्ञानानन्द स्वभावसे परिपूर्ण हूं।

(१०६) प्रबल एकत्वदृष्टिमें अद्भुत अविचलता—जिसके निज एकत्वकी जितनी दृष्टि प्रबल बनेगी, अधिक दृढ बनेगी उसको जरा जरा सी घटना जरा जरा सी हानि जरा जरासे गालीके शब्द ये विचलित न कर सकेंगे। असलमे यह बात है कि ज्ञानीको ज्ञान इतना प्रियतम बन गया उस पुरुषको कि बाहरी बाते, उपद्रव कितने ही आयें तो उन्हे भी सहता, परवाह नही करता पर ज्ञानको नही छोडता जैसे यहांके मोही लोग जिन्हे धन प्रियतम हो गया, या जो भी प्रियतम बना उसे नही छोडता। चाहे कितने हो कष्ट सहे. ऐसे ही

ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञानभावको नहीं छोडता, चाहे वह कितने ही कष्ट उठा ले, उपद्रव आ जाय पर इतना भी नही सोचता कि अगर यह ख्याल मुझे चोट रहा है तो इसे भगा दूं, फिर अच्छी तरह ध्यान करूं। बीचमे भी यह विकल्प करूं और भगाऊँ तो आगेकी क्या आशा है कि विकल्प न हो। यह ही उन उपसर्गोंके सहनेकी कुञ्जी है। जैसे कहते हैं कि गोदका लड़का छोड़कर पेटकी आशा करना। यह एक कहावत है। तो जो मेरे अनुभवमें आ रहा, ज्ञानस्वरूपमे ज्ञानस्वरूपकी अनुभूतिको तजकर क्या आशा करना कि मैं इस गीदड़ी को भगा दूं फिर बादमे आरामसे आत्मामे मग्न होऊगा, उसकी क्या आशा करना ? उपसर्ग सहते।

(११०) अन्तर्मग्न होनेका ज्ञानीका दृढ निर्णय—ज्ञानीके एक ही निर्णय है कि ज्ञान को ही भोगना है दूसरा कोई प्रोग्राम नही है, क्योकि उसको अपने आपमे अपने स्वरूपका दर्शन हुआ। और अलौकिक आनन्द आया है। जो स्वरूप, बस देखा ही जा सकता है, अनुभवा ही जा सकता है, पर शब्द द्वारा नही कहा जा सकता। जिसका दर्शन हुआ है, उसका आनन्द तो अनुभवा जा सकता, पर कहा नही जा सकता शब्द जितने हैं वे सब विशेषण हैं। विशेष्य कोई शब्द नही। व्यवहारमे भी तो जितने शब्द हैं वे सब विशेषण हैं। जैसे—चौकी—जिसके चार कोने हो, यह कोई नाम तो नही लिया गया। अभी तो विशेषण ही लगाया, लोटा, जो लोटता रहे, भीत, जिसमे ईंटें भिच गईं उसका नाम है भीत। तो कौन सा शब्द ऐसा है कि जो असली नाम हो। नाम वाला कोई शब्द नही। सब विशेषण हैं। और कुछ गुंजाइस ही न थी तो किसी भी विशेषणको नामरूपमे रख दिया। मेरा कुछ नाम नही, मैं अपनेको कषायसहित कहू तो गलत, कषायरहित कहू तो गलत। कषायसहित स्वरूप थोडे ही है। स्वरूपमे तो अविभागप्रतिच्छेद है। कषायरहितमे क्या जाना गया? कषायसहितमे क्या जाना गया ? खुद तो नही जाना गया। खुद तो एक ज्ञायक मात्र स्वरूप है, सो भी विवश होकर शब्दमे बोलना पडा। वह शब्द भी एक विशेषता बतला रहा है कि जाननहार। समस्त ख्यालात छोड़कर प्रसंग छोड़कर परमविश्रामसे कोई अपनेमे-स्थिर हो तो सब बातें उसके अपने आप प्रकट हो जाती हैं।

(१११) परिणामकी परख—जैसे बड़े-बड़े जलाशयोका पानी आतापसे, सूर्यकी किरणो से भाप बनकर अपने असली घरसे उडकर बहुत ऊपर बड़े अन्तरसे कठोर रूपमे रहा करता है, उन्हे कहते है बादल। समुद्रमे ही था वह नम्र था, पर आतापके कारण वह पानी उड़ा, भाप बना और बहुत ऊपर कठोर रहने लगा। और गरज रहा-बहुत बहुत। वही पानी, अपनी कठोरता छोडकर जब बरषता है तो बरषकर निम्नता प्रकृतिके कारण बह-बहकर उसी जलाशयमे इकट्ठा हो जाता है। क्या ढग रहा ? अपने स्थानसे उड़ा, कठोर बना, फिर पिघला,

बरसा, नीचेकी ओर ढला और जहांका तहाँ पहुंच गया। ऐसे ही इस ज्ञान जलाशयसे भव-तापके कारण आशा आदिक अग्निसंतापोंके कारण यहांसे उपयोग उड़ा और किस किस ढंगमें बाहर गया, बाह्य पदार्थोंका सहारा लिया, कठोर बना। कहाँ तो यह स्वभावसे भोला, सरल, अविकार और कहाँ उपयोग क्रोधी, मानी, कपटी, लोभी आदि कितने ही विकल्पोंसे यह उपयोग कठोर बना गया। कठोर बनकर उड रहा है। बाहर ऊपर चारों तरफ उड़ ले, आखिर उड़नेके बाद जब समय आयगा तो यह उपयोग नम्र होकर फिर अपने स्थानकी ओर हो लेगा उन सब स्थानोसे हटकर अपने आपके धाममे आयगा। निम्न बनकर, नम्र बनकर अपने आप की ओर अभिमुख होकर जब यह उडा हुआ उपयोग अपने मूल इस ज्ञान जलाशयमें मिल जायगा तब उसकी भटकना बंद हो गई समझिये और नाटक भी पूरा हो गया। तो इस सारे नाटकके बीच यह सोचना चाहिए कि हम किस जगहका पार्ट अदा कर रहे है। उड़ रहेका कर रहे, कठोर बननेका कर रहे या नम्र बननेका कर रहे, गरज रहेका कर रहे या नम्र बनने का कर रहे या निजधाममे मिलनेका कर रहे।

(११२) निजगुणपरिणतिके सिवाय अन्यपरिणति किये जानेकी अशक्यता—अपनी गुणक्रियाके सिवाय जीव और करता ही क्या है? सर्वत्र उसकी यह ही बान पड़ी हुई है। इस के अतिरिक्त और कुछ नही करता, इसके अतिरिक्त और कुछ नही भोगता। बाहर अणु मात्रसे भी मुझ उपयोगका कोई सम्बंध नही। यह तो इकतरफा बात चल रही है। जैसे कि लोग कहते है कि मान न मान, मैं तेरा महिमान। जगतके ये बाह्यपदार्थ मुझको कुछ भी नही मानते, मान ही नही सकते, दोष की भी बात नही। वस्तु का स्वरूप है ऐसा। कोई किसी दूसरेको कुछ ले दे नही सकता। जो कोई कुछ भी करता है सब अपने आपमें अपनी चेष्टा करते है। तो मेरेको कौन मानता है? कौन समझता है और मै मान न मान मैं तेरा महिमान यह है सब ससारी जीवोकी आदत। किसी भी परद्रव्यसे रंच भी सम्बन्ध नही। अनेक भव बिता डाले। जो कवायत आज कर रहे है, जो श्रम और व्यायाम इस जीवनमें कर रहे है वही श्रम और व्यायाम पहले भी अनेक भवोमे किया। उस श्रमका फल क्या मिला? कुछ है क्या हाथ? तो जैसे इस भवमें पहले भवोमे समागत चीजोको सर्वस्व मान-कर उस अज्ञानमे रहकर जीवन बिताया वैसे ही आज आजके समागमोमे रहकर, अज्ञानी बनकर जीवन बिताया जा रहा है।

(११३) निराकुल होनेका स्वाधीन सरल उपाय— "राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम?" सरल है उपाय, सच्चा है उपाय, स्वाधीन है उपाय। करना भी क्या है? सब कुछ तैयार है, परिपूर्ण है, निस्पन्न है। केवल एक भोगने अर्थात्

दृष्टि देने भरकी ही कमी है। इसके लिए बहुत साहस बनाना होगा। पहला साहस है लोभ का त्याग। वैभवमे घरमे, मकानमे, इनमे मोहका त्याग। इनसे निराला हूं मैं, मिल गया झटपट। उदयवश हो गया तो इसमे मेरी कला कुछ नही है वर्तमान भावसे यह सम्पदा नही आती योग सयोग है आ गयी। उसमे मेरा क्या? उसमे क्यो जकडा रहू, क्यो उसमे महत्त्व बनाये रहू? यह अधकार है। अंधेरेमे भला नही। ज्ञानप्रकाशमे आवो।

(११४) फसावसे हटकर निजधाममें पहुँचनेका उपायदर्शी आकस्मिक साधन—कोई एक पुरुष किसी दूसरे गाँवसे अपने गाँवको जा रहा था, रास्तेमें शाम हो गई। और, अनेक रास्तायें फूटी हुई थी। रास्ता भूल गया और जंगलमे जाकर फँस गया। रात्रिके ९-१० बज गए, परन्तु वह आगे बढता गया इसलिए कि रास्ता मिल जायगा तो मैं जंगलसे निकल जाऊँगा, पर ज्यो ज्यो चलता गया त्यो त्यो जंगलमे उलझता गया। बीहड पहाड़ी जंगल था। किसी आदमीका वहाँ नाम नही। वह बड़ा घबडाया। थोडा धैर्य बनाकर सोचता है कि अब आगे मत बढो, यहाँ तो जितना बढते है उतना ही फसते जा रहे। सो वह उसी जगलमे एक जगह रुक गया, बैठ गया, लेकिन चिन्ता बनी हुई है। कहाँ फस गया? यहाँसे निकल भी सकूंगा या नही? बस चिन्तातुर बैठा हुआ था। अचानक ही मेघमे बिजली चमकी और उससे थोडा क्षणिक उजाला हुआ कि उस उजालेमे कुछ दूर नीचेकी ओर सडक दिख गई। बिजली खतम, प्रकाश खतम, वही अंधेरा, वही बीहड जंगल। वे ही सारी बातें, क्षणिक उजेलेमे जो सडक दिख गई, यह मार्ग है, बस इतने भर ज्ञानसे अब उसमे चैन आयी। कुछ शान्ति है, धीरतासे बैठा है, प्रतीक्षा कर रहा है। आने दो छुटपटा सवेरा, यहाँ चलना है, सडक है, उससे चलकर अपने गाँवमे पहुच जायेंगे। ऐसी ही यात्रा मेरी हो रही, ऐसी ही यात्रा यहाँ मनुष्योकी है। यह चलता जा रहा है, अनेक गलियाँ हैं, गलियोमे भूल जाते हैं, अनेक गोरखधधोमे फस जाते हैं। दुःखके बीहड जंगलमे फस गए, और ऐसा फंसे कि निकलनेका रास्ता नही दिखता। ज्यो ज्यो बढते है त्यो-त्यो और भी फसते जाते हैं। बहुत फसा बहुत घूमा, बड़ा बेचैन है। थकानके मारे वह बैठ गया। कभी यह मनुष्य थककर भी अच्छी बात कहने लगता है। मगर वह रोषमे कहता है। ऐसे ही सही, थक गया, बैठ गया क्षणभर के लिए उसने उस बडी आपत्तिके अवसरपर सबका ख्याल भुला दिया। सब बेकार है। जब जानकी नौबत आती है, प्राण जानेका समय आता है तो उद्बोध आता ही है। किसका ख्याल करना? यदि मर गए, किसी बाघ सिंहने खा लिया तो हम तो गए। किसके लिए मरना? सबका ख्याल छोडें, कुछ धर्मकी ओर चित्त दें, कुछ बाहरी श्रमसे मुख मोड़ें, कुछ विश्राम हो। इतनेमे क्षणभरको ही बाहरी ख्याल छोड़नेके प्रतापसे भीतरमे एक प्रकाश हुआ।

ऐसी ज्ञानविद्युत चमकी क्षणभरको जिसमे स्पर्श तक न कर पाये, किन्तु तकसो लिया गया। समझमे आ गया कि यह है अपना असली धाम। यह है शान्तिका घर, विश्रामका घर। तो बड़े दुःखके बीच रहकर भी अब इस ज्ञानीको धैर्य आ जाता है। परवाह नही। जान तो गया, वह है मार्ग। जो निजमे तकेगा, उसपर चलेगा उसका सब झगडा शान्त हो जायगा। देख लिया वह रत्नत्रयमार्ग भीतर ही अपनेमे, उसपर चलेगा। वह मार्ग तो बडा साफ है, स्वच्छ है, पर कुछ दूर है। अणुव्रतकी पगडंडियोसे चलकर उस स्वच्छ पथपर पहुंचनेका पात्र हो ही जायगा। उसे धैर्य है, रह रहा है गृहस्थीमे, पर चित्त शान्तिधाममे पड़ा हुआ है। ऐसा जिसने अपने विज्ञानघन आनन्दस्वरूप निज तत्त्वको साक्षात् किया, प्रत्यक्षभूत किया, ज्ञान द्वारा अनुभवमे लिया वही पुरुष अमीर है, वही पुरुष श्रेष्ठ है, वही पुरुष है, यह ही कल्याण है, बाकी सब गोरखधंधा है।

(११५) **आत्मस्वरूपपरिचयकी प्रयोगसाध्यता**—इस आत्मस्वरूपका परिचय तो प्रयोगसे ही मिलता है, शब्दोसे नही, पक्तियोसे नही, अर्थसे नही। प्रयोगसे। जैसे मिश्रीके स्वादका सही परिचय खानेसे मिलता है, समझानेसे नही, बोलनेसे नही, ऐसे ही इस अविकार ज्ञानघन अंतस्तत्त्वके परिचयका स्वाद प्रयोगात्मक परिचयसे प्राप्त होता है। विकल्प तोडें, दिल को हल्का करें, चित्तको ढीला करें, विश्राममे लायें तो सहज ही ऐसी ज्ञान ज्योति उमडेगी कि उसका दर्शन होगा, उसका स्पर्श होगा। बस उसपर चलनेका काम है। गुप्त ही गुप्त कही भी एकान्तमे, घरमें किसी भी जगह धुन बनाकर इसका अनुभव करें, आस्वाद लें, बस यह ही शरण होगा। जगतमे कोई दूसरा शरण नही है। हमारे अनुभवी पुराण पुरुषोने जिन्होने इस आत्मतत्त्वका अध्ययन किया, अपने अनुभव हम सब पर करुणा करते हुए अपनी लेखनी से लिख गए। हम बाँच लेते है पर प्रत्येक शब्दका यह शब्द क्यो दिया? उसका अध्ययन करें तो उसके भीतर मर्म छिपा तत्त्व है, निधि है उसे खोजा जा सकता है। यो तो कुछ लोग कहते है कि राम रावणके युद्धके समय बानर सेनाने समुद्रको लाँघा। सारा समुद्र लाँघ गए। कथायें है उनकी। दृष्टान्तके लिए मान लो, भले ही लांघ लिया हो लेकिन समुद्रमे क्या क्या रत्न छिपे हुए हैं, क्या क्या उसमे पड़ा है इसका परिचय क्या समुद्र लांघनेसे हो जायगा? यह परिचय तो समुद्रमे डुबकी लगानेसे होगा। भीतर ही भीतर खोजनेसे होगा। कि यहाँ कैसे कैसे रत्न पडे है। ऐसे ही हम पन्ने उलट कर पढते चले जायें और अर्थपर दृष्टि नही, संगत शब्दकी चर्चा नही, हम मर्म नही समझ सकते कि जो अनुभव आचार्य संतोने किया, बात कही,

(११६) **अज्ञानमे विकारका आमंत्रण**—ज्ञानघन यह आत्मा किस प्रकार परवश

हो रहा, बँधा हुआ सा, अधीर बन रहा, दुःखी हो रहा। वह कोई वातावरण ही तो है। भले ही प्रत्येक पदार्थ की निज निजमे ही परिणति होती है। पर विकारके लिए यदि स्वतंत्र है तो विकार फिर मिटनेका अवसर कहाँ? विकार होना पड़ रहा है, विकार करना पड़ रहा है। जिसको अविकार स्वभावके देखनेकी रुचि है वह स्पष्ट जानता है पूर्वबद्ध कर्म जब भूत प्रेतसे भी भयानक स्थितिमे आते हैं याने उनके अनुभागका जब उदय होता है तो वह अपने आपमें विरूप हो जाता है, क्षुब्ध हो जाता है। उनमे विस्फोट होता है। वह सब कर्म की परिणति है। पर हो तो रहा यह एक क्षेत्रावगाह और वह सारा मौज, सारा रंग इस उपयोगमे बसा। यह उपयोग गदा हुआ और फिर इतनी मूढता कि उस गंदेपनमे आये उपयोगको अपना भी लिया। यह सब क्या है? यदि किसी दुष्टको अपनेमें थोड़ी जगह देवें या महिमानका बडा आदर करें। जिस महिमानकी यह इच्छा है कि मैं इस घरमे महीनो रहूँ तो वह तो रहेगा। उसका आदर किया ना? तुमने महिमानको अपना लिया। प्रभावित हो गए। यह नही जाना कि यह तो महिमान है। महिमा न, जिसकी कोई महिमा नही उसी को तो महिमान कहते हैं। जो रंग आया, जो कषाय आयी वैसा बुद्धिमे रंग गया। भयमे भय किया। जिस प्रकृतिका रग हुआ उसकी झाँकी हुई, इस उपयोगने अपनाया और अपने आप पराधीन बना। जगतमे रुल रहा।

(११७) रहे सहे जीवनका सदुपयोग कर लेनेमे विवेक—भैया! जरा चिन्तन कीजिये कि जगतमे लोग जब चाहे मर जाते है। कोई गर्भमे, कोई बाहर आते ही मर जाता, कोई शिशु, बालक, कोई जवान, कोई वृद्ध, यों जब चाहे जो चाहे मर जाता है। अभी तक जीवित हैं तो समझो कि मुफ्त ही जीवित है। अभी तक जीवित है यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। अन्यकी भाँति हमारा भी जीवन खत्म हो गया होता तो हमारी क्या हालत होती? न जाने किस पर्यायमे होते? न जाने क्या स्थिति होती? आज तक जो जीवित हैं तो समझो कि यह जीवन मुफ्त ही मिला है। अभी तक हम आप जिंदा हैं इसमे आश्चर्य है। मर जानेमे क्या आश्चर्य? जैसे जलका बुदबुदा, उसके कुछ समय तक टिक जानेमे आश्चर्य है, उसके फूटनेमे क्या आश्चर्य? ऐसे ही हम आपके जीवित रहनेमे आश्चर्य है। मरणमे क्या आश्चर्य? तो इस दुर्लभ जीवनको पाकर यह समझें कि हमारा यह जीवन आत्महित करनेके लिए मिला है, अन्य फिजूलकी बातोके लिए नही। तो जो यह रहा सहा जीवन है इस जीवनका हम सदुपयोग करे। सदुपयोग यही है कि ऐसा पौरुष करें कि इन परतत्त्वोसे हटकर निज तत्त्व के ज्ञानमे, चिन्तनमे, मननमे देखते ही रहे आत्माको। जिसे बैठना कहते ऐसा भीतर आराम से बैठना ही रहे, इस ज्ञान द्वारा ज्ञानधाममे ज्ञानको बिठायें। भीतरका यह पौरुष होना

चाहिए, जीवनकी सफलता इस ही अन्तर्यत्नमे है।

(११८) **मंगलमय होनेका तंत्र**—यह मंगलतत्र मंगलरूप होनेका उपाय है। मगल अर्थात् मं गल याने पापको नष्ट करने वाला। मंगल याने मंग ल, मग मायने आनन्द, आनन्द को लाने वाला। ऐसा जो भाव है उसे कहते है मगल, अर्थात् जहाँ दोष एक भी न रहे और गुण सम्पूर्ण प्रकट हो ऐसी अवस्थाको कहते है मगल। यह मंगलतत्र मंगलमय होनेका तत्र है अर्थात् उपाय है। मगलस्वरूप चूँकि केवल ज्ञानमय है, अतः सर्वप्रथम अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव करना चाहिए। इस ज्ञानमात्र तत्त्वमे परका प्रवेश नही है, जैसे कि आकाशके स्वरूप मे किसी परका प्रवेश नही। जब प्रवेश नही तो भार ही किसका? जब भार नही तब विह्वलता ही क्यो? तो ज्ञानमात्र सोचते ही विह्वलतायें दूर हो जाती हैं। इस मुझ मंगलमय स्वरूपमे सर्वत्र ज्ञानघन बसा हुआ है। यह मैं अपने आपमे ज्ञानसे ऐसा परिपूर्ण हू, परिपूर्ण था, पूर्ण हू, पूर्ण रहूगा तो यहाँ कुछ अधूरापन है ही नही, फिर मैं क्यो कुछ सोचूं? मैं तो कृतकृत्य हू। यह मैं मगलमय अतस्तत्त्व अपने आप स्वतः सिद्ध सहज ही आनन्दस्वरूप हू। जब मैं स्वतः आनन्दस्वरूप हू तो मेरेमे कष्टका कुछ अवकाश ही नही है जहाँ कष्ट नही और आनन्द ही आनन्द सहज आनन्द बस रहा हो वहाँ स्वय अनुपम तृप्ति होती है। तो यह मै मगलमय अन्तस्तत्त्व स्वयं तृप्त हू। ऐसे शुद्ध मगलस्वरूप कारणसमयसारकी जो आराधना है वह ही मगल हानेका उपाय है। इस उपायमे अनादि अनन्त अहेतुक शाश्वत ज्ञानमूर्ति अत-स्तत्त्वकी आराधना की है। इस आराधनाके प्रसादसे ही मगलमय अवस्था होती है।

॥ मगलतंत्र प्रवचन समाप्त ॥

सात्त्विक रहन-सहन

आत्माकी सात्त्विकता—हम सब जीव शांति चाहते है, और जितने भी प्रयत्न करते हैं ये सब शान्ति पानेके लिए किया करते हैं, किन्तु शान्ति है कहाँ? जहाँ यह परिस्थिति बने कि जो जैसा है उस वैसा रहने दें। जो स्वयं जैसा है उसे वैसा जानें, देखें। इस वृत्तिका नाम है सात्त्विक वृत्ति। आत्माका स्वभाव केवल एक प्रतिभास है, ज्ञाता द्रष्टा रहनेका है। इसका विशुद्ध स्वरूप और परिणमन केवल एक प्रतिभास है। सात्त्विक स्वरूप और परिण-

मन केवल एक प्रतिभास है। सात्त्विक स्वरूप यह है और इस वृत्तिसे चलना सो आत्माका सात्त्विक रहन-सहन है।

आत्मविराधक शृंगार—सात्त्विक स्वभाव वाले इस आत्मापर जब शृंगार लाद दिया जाता है तब यह आत्मा नोकल हो जाता है और इसे जगतमे रुलकर दुःखी होना पड़ता है। इस आत्मापर क्या शृंगार लादा जाता है? शृंगार नाम है अन्य चीज लादनेका। स्वयमे से स्वय उत्पन्न हुई सुन्दरताको लोग शृंगार नही कहा करते। वह तो सुन्दरता है, शृंगार बाहरी चीजें लादनेको कहा करते है। इस आत्मामे शरीर कर्म रागद्वेष विचार-विकल्प ये सब शृंगार आत्माको पहना दिये जाते है। तो इस आत्माकी क्या विडम्बना होती है, इसके परखने वाले ज्ञानी साधु पुरुष हुआ करते हैं और जो इसी शृंगारमे डूबे हुए है वे ससारी मोही प्राणी हैं, उनमे ऐसे शृङ्गार वाले बुरे नही जचते। और ऐसे शृंगारीजन ऐसे शृङ्गारके रुचिक लोगोमे अपना शृङ्गार बनाया करते हैं।

सात्त्विक वृत्तिका प्रकाश—जैसे अध्यात्म स्थितिमे सात्त्विक रहन-सहन और शृंगार वेश-भूषा फैशनका जो एक अन्तर है ऐसा ही अन्तर व्यवहारमे सात्त्विक रहन-सहन और शृंगार शौक फैशनमे वैसा ही अन्तर है, जैसे है वैसे ही अपनेको रखें। हाँ गृहस्थावस्थामे व्यवहारिकता भी रहती है विशेष, अतः साधारण कपडे पहिन लें, स्वच्छ साफ कपड़े पहिन लें बस यही तो है सात्त्विक रहन। जिस जगह भी आडम्बर, सजावट न रहे, वहाँ राग प्रदर्शक बातें न रहे यही है सात्त्विक निवास। कोई कुछ कहे उन बातोमे क्षोभ न लाना और उनकी उपेक्षा करना, शान्त भावसे रहना, यही है सात्त्विक सहन। सात्त्विक रहन, सात्त्विक निवास, सात्त्विक सहन, सात्त्विक आहार, यही सब है सात्त्विक वृत्ति।

सात्त्विकतामें आराम— जैसा रोज-रोज खाया जा सके वैसा ही खाना यही है सात्त्विक आहार। अहिंसापूर्ण भोजन हो, रसीला, स्वादिष्ट चटपटा न हो, मसालेकी किसी साग वगैरहमे आवश्यकता क्या, थोडा छौंकते समय कुछ जरूरतसी पडती है, उसके बाद जितना मसालेका सचय होगा वह फिर मसालेका साग बन जायगा। जैसे परवल है, उसमे खूब मसाले डालकर बनाया तो वह साग परवलोका न रहेगा, वह मसालेका साग बन जायगा। ये सब असात्त्विक बातें है। सीधे-साधे सरल ढंगसे रहना चाहिए। सात्त्विक रहन-सहन भोजनमें ऊब न होकर वास्तविक प्रसन्नता रहती है।

सात्त्विक आहारमे निर्बाध निर्वाह—एक बार ईरानके बादशाहको भारतके बादशाह ने निमन्त्रण दिया, तो आप जानते हैं कि जितनी तरहके व्यञ्जन बनाना हिन्दुस्तान जानता है हमारे ख्यालसे उतनी तरहके पकवान व्यञ्जन बनाना किसी देश वाले नही जानते होगे।

ईरानके बादशाहको खूब नाना व्यञ्जन खिलाये। बादशाह खाता जाय और कहता जाय, जापते ईरान, भोजन तो ईरानका है। भारतवासी बादशाह यह सोचता है कि भोजन तो हमारे देशका किया है और प्रशंसा ईरानके भोजनकी करता है। अब कुछ दिन बाद ईरानके बादशाहने भारतके बादशाहको बुलाया तो वहांके भोजनमें क्या, वही सीधी रोटी साग। तो परेशान होकर सोचता है कि यह तो ईरानके भोजनकी बड़ी प्रशंसा करता था। यह तो कुछ भी नहीं है, तो बादशाहसे पूछा कि तुम तो ईरानके भोजनकी बड़ी प्रशंसा करते थे, क्या यही ईरानका भोजन है? तो वह बोला—हां साहब यही ईरानका भोजन।...बढ़िया किस तरह? आप यहां वर्षों तक बने रहे तो हमारी कभी यह इच्छा न होगी कि आप यहांसे जायें, बहुत दिन हो गए। सादा भोजन है, आप खूब खायें, और तुम्हारे देशमें कोई ६ महीने भी रह जाय और वैसा ही भोजन खिलाते रहे तो कुछ दिन बाद आपके मनमें फर्क आ जायगा। यह कब तक रहेगा यहां? यह है सात्त्विक आहार।

सात्त्विक वृत्तिसे आनन्दपात्रता—सात्त्विक वृत्ति व्यवहारमें इस जीवको ऐसा पात्र बना देती है कि यह आध्यात्मिक क्षेत्रमें अपनी सात्त्विकतासे प्रीति करना चाहे तो कर सकता है। देखो जितने भी महापुरुष हुए हैं वे कितने सात्त्विक रहन-सहनके थे। उनकी पोशाक, उनका रहन-सहन देख लो। भारतमें आपके गांधी जी हुए, और त्याग क्षेत्रमें जो त्यागी सन्त जन प्रसिद्ध हुए हैं उनकी सात्त्विकता देख लो, जिसने बड़े वर्णी जी महाराजका दर्शन किया होगा वे खूब पहिचानते होंगे, उनके हृदयमें सात्त्विकता, ऊपर सात्त्विकता, बोलीमें सात्त्विकता थी और ऊँचे जैसे-जैसे लोग बढ़ जाते हैं सात्त्विकताकी वृद्धि होती है। मुनि अवस्था और किसका नाम है? भीतर सात्त्विकता, ऊपर सात्त्विकता पूर्ण रूपसे हो, उसीका नाम मुनि है। कोई शृंगार नहीं, सज-धज नहीं बनावट नहीं, दिखावट नहीं, जैसा पाहै तैसा रह गया इसीके मायने हैं साधु। तो अब दृष्टि दो, सात्त्विक रहन-सहनसे रहा जाय तो वहां शांतिका अवसर मिलेगा।

चमडेकी पर्तोका। यह अतिथि ज्ञाता कभी कौतूहलसे इस ज्ञानरूपी हाथसे इस चमडेकी पर्त को हटाकर भीतर निगाह करे तो सब पता पड जायगा। ऐसे ही इस शरीरको सजानेका परिणाम रखें कोई तो समझो कि जैनधर्मसे कितना विपरीत जा रहे हैं अर्थात् धर्ममे लगनेका वहाँ अवसर कहाँ है? शीशेमे बार बार मुख देखा, खूब सजावट किया, पाउडर लगाया, लिपिस्टक लगाया अनेक प्रकारके गहनोसे इस शरीरको सजाया, कानमे ततैया, नाकमे मक्खी, मस्तक पर मकड़ी, ये सारे गहने शरीरमे खूब लाद लिये तो यह बताओ कि इसमे कौन-सा विवेकका काम किया? अरे इन शौक शृङ्गारोसे हटें और अपने कर्तव्यकी बात सोचें।

शृंगारसे हानियां— अपनेमे आत्मीयताका नाता रक्खें, मैं आत्मा हू, मुझे सुखी होना है। यह ससार मायारूप है, क्षणभंगुर है, कितने दिनोका है। अपने आपको अपने आपके हितकी बातोमे लगायें, और बाहरी बातोकी उपेक्षा करें। देखिये इस शृंगारसे कितनी हानियां है, मिथ्यात्वका पोषण है। इस शरीरको आत्मा मानना इसीका नाम मिथ्यात्व है ना, और शरीरपर इतनी ज्यादा दृष्टि देना साज शृंगारकी, तो यह मिथ्यात्वका पोषण है कि नही? ठीक है, सभ्यताके नाते थोडा हो गया, और सुन्दरता उस ही सात्विक वृत्तिमे आती है। जैसे मान लो मुँहपर पाउडर लगानेसे एक शृंगार बनता है तो थोडा क्यो लगाते, ज्यादा जो लगा लो ताकि ज्यादा सुन्दरता बढ़ जाय। अरे देखने वालोको अगर यह ख्याल आ जाय कि पाउडर पुता है तो उतनेसे ही उनके दिलसे सुन्दरता उतर गयी।

सात्विकतामें लाभ—भैया! जो बात सात्त्विकतामे है, वह व्यवहारमे लाभदायक है और अध्यात्मक्षेत्रमे भी लाभदायक है। दिखावट, सजावट, बनावटसे कुछ लाभ नही है। जैसे व्यवहारमे सजावटसे दूर रहना एक लक्ष्यमे होना चाहिए ऐसे ही अध्यात्मक्षेत्रमे भी सजावटसे दूर रहना एक लक्ष्यमे होना चाहिए। जैसे गहनोसे अपने शरीरको कोई लादे तो इसीका नाम सजावट है ना, इसी तरह इन परभावोंकी रागद्वेष विषय कषायोको अपने उपयोगमे ग्रहण करके आत्मामे सजाना लगाना इस रूपमे अपनेको मानना यह आत्माकी बनावट सजावट की जा रही है।

•••